श्री

स्वामी रामतीर्थ।

उनके सदुपदेश—भाग ११।

प्रकाशक

श्री रामतीर्थ पब्लिकेशन लीग।

लखनऊ।

प्रथम संस्करण प्रति २००० —:*:— अक्तूबर १९२१ आश्विन १९७८

मूल्य डाक व्यय रहित।

बिना जिल्द ॥=) फुटकर सजिल्द ॥|=)

विषयानुक्रम ।

PRINTED BY K. C. BANERJEE

AT

THE ANGLO-ORIENTAL PRESS, LUCKNOW.

निवेदन ।

हमें यह लिखते प्रसन्नता हो रही है कि ईश्वर की अपार कृपा से लीग आप की सेवा में यह तीसरा भाग भी दूसरे भाग साथ २ इसी अक्तूबर मास के भीतर भेजने में सफल हुई यदि ईश्वर ने चाहा और छपाई की रफतार ऐसी ही बनी रही, तो हमें पूर्ण आशा है कि इस वर्षा का चौथा भाग हम नवम्बर मास के भीतर २ तैयार करवाकर आप की सेवा में भेज सकेंगे। आप सज्जनों की सहानुभूति और सहायता की लीग को अत्यावश्यकता है। जितनी संख्या आप लोग ग्राहकों की अधिक बढ़ायेंगे, लीग का उद्देश्य उतना ही शीघ्र पूर्ण होगा और इस संस्था के संस्थापकों व कार्य कर्ताओं का उत्साह बढ़ेगा। इस लिये अन्त में यही निवेदन है कि रामभक्त संगठित उद्योग से इस निष्काम कार्य में पूर्ण योग दें और इसे सफलता तक पहुंचाये।

मंत्री

स्वामी राम की जीवनी ।

पर

श्रीयुत सी एफ़ ऐण्डरूज, भूतपूर्व प्रौफेसर मिशन कॉलेज
देहली द्वारा लिखित लेख।

मैं इस लेख का शीर्षक एक ऐसे पुरुष को बनाया चाहता हूं कि जिस का नाम पञ्जाब में, उस के त्याग के जीवन और धार्मिक तपश्चर्या के कारण, बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। वह कौन है ? स्वामी राम तीर्थ।

यद्यपि मुझे उन के साक्षात् दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ जैसा कि इस लेख के पढ़ने वालों में से कुछ लोगों को हुआ होगा; किन्तु मैं ने अपने भारतीय मित्रों से उन का बहुत कुछ हाल सुना है और बड़े ध्यान से उनके व्याख्यानों और लेखों को पढ़ा है। मैं बहुत सी बातों में उन के विचारों को स्वीकार नहीं कर सकता. विशेष करके जब वह एक पक्के वेदान्ती की स्थिति (हैसियत में दृष्टिगोचर होते हैं, जो आत्मा और परमात्मा में किसी प्रकार का अन्तर या सापेक्षक अन्तर स्वीकार नहीं करता, तो मेरा अन्तः करण और मेरा विचार दोनों चौंक उठते हैं। परन्तु कई एक सिद्धान्त और मामले ऐसे हैं जिन के सम्बन्ध में मैं उनकी सम्मतियों से नितान्त सहमत हूं। और मेरे समीप उनकी धार्मिक वृत्ति ऐसी शुद्ध, पवित्र, सादी और सच्ची है कि उन की प्रशंसा में मैं दूसरों के साथ अपनी सराहना भी मिला देना चाहता हूं।

यदि मैं उन के प्रमुख वाक्यों का सार वर्णन करूं कि

जिन का प्रभाव मेरे चित्त पर अधिक पड़ा है और जो स्वामी राम के व्याख्यानों वा लेखों में पाये जाते हैं, तो वे निम्न लिखित होंगे:

(१) त्याग (renunciation)

(२) यज्ञ,अर्पण अथवा आत्म-समर्पण (Self sacrifice)

(३) स्वार्थ-त्याग (Self denial)

सब से प्रथम और सब से मुख्य त्याग का भाव है, जो सदैव उनके सन्मुख रहा, और उनका मनोहर संदशा भी वही है जो माया (धन), सांसारिक इच्छा, भोगों और ठाठ-बाटों के त्याग देने के विषय में हैं। स्वामी जी ने अत्यंत स्पष्ट रीति से मालूम कर लिया कि यदि हमें आध्यात्मिक उन्नति और विकास की इच्छा है तो इन उक्त विषयों से न केवल मौखिक वरन् व्यावहारिक रीति से पृथकता करनी चाहिए। इस विषय में उनमें एक सच्चे संन्यासी की वृत्ति (Spirit) पाई जाती है, और इसमें उनकी भारी प्रवृत्ति तथा हृदय की शुद्धि उस समय सब से अधिक हार्दिक सन्तोष देती है, जब कि वह त्याग के विषय पर कुछ लिख रहे हों। लेकिन वह भूत काल की बातों को मनोहर ढँग से वर्णन करते हुए यह चाहते हैं कि लोग बीरता के साथ स्वार्थ-त्याग और बलिदान (आत्मसमर्पण) की नई चट्टियों (मंज़लों) पर पहुँचें, और साथ यह भी चाहते हैं कि इस युग में संन्यास का तात्पर्य यह लिया जाय कि संन्यासी सामाजिक काम करें और स्वदेश-भक्ति को प्रत्यक्ष व्यवहार में लायें। वह लिखते हैं– "नियम और सिद्धांत मनुष्य के लिये हैं; न कि मनुष्य उन के लिये"। क्या हमारे पुराने बस्त्रों में पहले ही बहुत से पैवंद और टांके नहीं लग चुके हैं? मुझे एक तो ऐसी

नदी बताओ जिसने अपना पहला मार्ग छोड़ दिया हो और फिर दुबारा उसी मार्ग पर बहने लगे; मुझे एक ऐसा उदाहरण बताओ जहां एक शरीर में पहिले प्राणों के त्यागने के बाद नये प्राण पैठ गये हों। नई मदिरा पुरानी बोतलों में नहीं भरी जाती। गन्ना जिसका रस शुष्क हो, वह उसी रूप में अपने रस को दुबारा प्राप्त नहीं कर सक्ता, उसे तो जला देना चाहिए। फिर वह लिखते हैं "इमारतें और अन्य वस्तुएँ अपने रूप और संबन्ध बदलती रहती हैं; और जिन रूपों और संबंधों को वे एक बेर छोड़ देती हैं, उनको दुबारा ग्रहण नहीं करतीं. इत्यादि। कुछ ऐसे लोग हैं जिनके निकट स्वदेश-प्रेम के अर्थ यह हैं कि भूत काल की महिमा का रोना प्रति समय रोया जाय; वह उन घोंघों के समान हैं जो नए पानी में एक ठौर से दूसरे ठौर पर अपने पुराने घरों को पीठ पर लादे फिरते हैं; वह दीवालिया साहूकार हैं जो अपने जीर्ण बहीखातों को, जो बिलकुल निकम्मे हैं, सँभाल-सँभाल कर रखते हैं। इस चिंता में समय नष्ट न करो कि भारतवर्ष में महिमा थी; बरन् अपनी शक्ति सञ्चित करो जो बिखड़ी हुई और अनन्त है। और अनुभव करो,हाँ यह अनुभवकरो, कि भारतवर्ष को महिमा प्राप्त होगी।

फिर स्वामी जी यह ग्रहणीय शब्द लिखते हैं कि "शब्द त्याग को लाचारी और भाग्य पर भरोसा सिखलाने वाली दुर्बलता का तुल्यार्थ वाची शब्द नहीं समझना चाहिए, और न उसे अभिमान पूर्ण संन्यास का समानार्थक मानना चाहिए। यह कोई त्याग नहीं कि तुम बिना सामना किए भयानक भेड़ियों को अपने इस शरीर, अर्थात् 'ईश्वर के मंदिर' को खा जाने दो। त्याग के अर्थ तो हैं—'सत्य के

लिये सब कुछ त्याग कर देना, उस पर से सब कुछ बलिदान कर देना'। तुम्हारा यह शरीर और माल सब कुछ ईश्वर का है। इसे ईश्वर की सेवा में खर्च करना चाहिए। तुम अपने स्थान पर होशियार खड़े रहो। अपने आप को सत्य से भिन्न और पृथक समझना और फिर सत्य के नाम से त्याग आरंभ करना. इसका अर्थ तो दूसरे शब्दों में यह है कि जो वस्तु तुम्हारी नहीं तुम उसका अनुचित व्यवहार करते हो! और इसी का नाम तो ग़बन या अनुचित अधिकार जमाना है।" स्वामी जी के लेखों में निस्संदेह त्याग के विषय में उत्तम, लाभदायक और व्यावहारिक शिक्षा मौजूद है।

<u>स्वामी जी के सदाचारिक गुण</u>—स्वामी जी उदार, कृपालु-स्वभाव, ईर्षा-द्वेष से रहित और शुद्ध, पक्षपात और मत मतान्तर की सनक से बिलकुल मुक्त थे। सत्य या सचाई चाहे किसी से भी और कहीं से भी मिलती हो, वह उसे स्वीकार करने और अपनाने में हर समय तैयार रहते थे। वह लोगों को विवश नहीं करते थे, वरन् उनके हृदयों पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न करते थे। वह व्यर्थ और असंतोषप्रद वाद विवाद में समय नष्ट करना नहीं चाहते थे। उनकी यह उदारता पूर्ण वृत्ति वहाँ प्रकट होती है, जहां वह ऐसे सिद्धांतों की चर्चा करते हों जो उनके अपने सिद्धांतों के विरोधी हों। उस में वह सदैव सदाचरण और सहानुभूति से काम लेते हैं। यही व्यवहार वह मसीही धर्म से करते हैं जिसकी पुस्तकों से वह सदैव प्रमाण दिया करते थे। इस विषय में वह सच्चा और स्वतंत्र भाव प्रकट किया करते थे, जो पक्षपात से सदैव

ऊंचा होता। सुतरां, स्वामी जी लिखते हैं कि "इंजील की नित्य प्रार्थना में आया है, "ऐ परमेश्वर! हमारी आज की रोज़ी हमें दे।" एक बादशाह को जिसे अपनी रोज़ी (आजीविका) की कोई चिंता नहीं, उसे भी यह प्रार्थना करनी होती है कि "हमारी आज की रोज़ी हमें दे", इस के अर्थ यह नहीं कि मनुष्यों को भिखारी भाव से प्रति समय ईश्वर से आर्थिक संपत्ति के लिये प्रार्थना करते रहना चाहिए, बरन् यह है कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह बादशाह हो या भिक्षुक, उसे अपने इर्द-गिर्द की समस्त वस्तुओं को अपना नहीं बरन् ईश्वर का समझना चाहिए। इसके अर्थ भिक्षा नहीं; बरन् त्याग हैं। जो मनुष्य प्रार्थना करता है, वह अपने घर की सारी संपत्ति और वस्तुओं को त्याग देता है। वह मानों पूजकों का पूजक और विरक्तों का विरक्त है, क्योंकि वह यह कहता है कि मेज़ और उस पर की समस्त वस्तु उसकी नहीं बरन् ईश्वर की हैं, और "प्रत्येक वस्तु जो हमें मिलती है, वह मेरे प्यारे अर्थात् ईश्वर से मिलती है।" इस प्रकार की बातें सहानुभूति, बुद्धि और धार्मिक विचार की स्वतंत्रता को प्रकट करती हैं।

कुछ सुनहरे वाक्य—स्वामी जी के लेखों और व्याख्यानों में तीसरी बात जिसने मुझ पर विशेषरूप से प्रभाव डाला वह यह है कि उनमें गंभीर बुद्धि पाई जाती है जो हर स्थान पर स्वीकृत होती है। यह गुण पंजाब के बहुत से मनुष्यों में पाया जाता है। इसके कई उदाहरण हमें पहले भी मिल चुके हैं, किंतु मैं कई उदाहरण और उपस्थित करता हूँ। जैसे इस विज्ञापन से बढ़कर और कौन सी बात अधिक व्यावहारिक और लाभदायक हो सकती है कि

"सुधारकों की आवश्यकता, ऐसे सुधारकों की जो दूसरों के सुधारक न हों, बरन् स्वयं अपने सुधारक हों।" या यह उदाहरण कि "इस नवीन हल चल के युग में अंत्यजों की सहायता करने से बढ़ कर काम कौन सा हो सकता है? बेचारे शूद्रों को प्रकाश, विद्या, और जीवनकी आवश्यकता है। लोग तुम्हें निकम्मों की सहायता करने के लिये बुरा भला कहेंगे, क्योंकि वह अंत्यजों को निकम्मा समझते हैं। किंतु एक निकम्मी वस्तु अर्थात् शून्य दस गुना मूल्य बढ़ा देता है जब कि उसे एक के सीधी ओर लगा दिया जाय। आओ तुम भी अपने एक १) के अंक की सीधी ओर शून्य (०) बढ़ा दो।"

मैं स्वामी जी की एक और कहावत पेश किए बिना नहीं रह सकता जिसमें पूर्वोक्त तीनों बातें पाई जाती हैं [अर्थात् स्वामी जी में सेवा करने की इच्छा, कृपालु स्वभावता और व्यावहारिक तेज समझ] वह लिखते हैं—"हम ऐसे अवसर पर उत्पन्न हुए हैं जो भारत वर्ष के इतिहास में नाजुक समय कहलाता है, इस लिये हमें धन्यवाद देना चाहिए कि हमारे लिये सेवा करने के अवसर बहुत अधिक हैं। हमारा समय अधिक विचित्र, अधिक मीठा और अधिक शक्ति का है। कहा जाता है कि जो लोग खूब सोते हैं, वह खूब काम करते हैं। भारत बर्ष बड़ी लंबी नींद सो चुका, इस लिये इसकी जागृति भी अत्यंत महान होनी चाहिए। हमें गुण-ग्राहकता की वृत्ति को जगाना है न कि छिद्रान्वेषिता के भाव को। हमें भ्रातृभाव में जोश उत्पन्न करना है न कि विच्छेद के भाव को उन्नति देना। शोक कि इस देशमें एक संप्रदाय दूसरे संप्रदाय का छिद्रान्वेण करने

में अपनी कितनी भारी शक्ति व्यर्थ नष्ट कर रहा है! आओ, हम प्रयत्न करके ऐसी बातें मालूम करें जो एक समान हों, जिनमें एकता और मिलाप हो, और उनको ही अपने बीच ज़ोर से प्रचलित करें ऐसे लोग पाए जाते हैं जिन तक आर्यसमाज की पहुँच हो सकती है, किंतु सनातन धर्म की नहीं। कुछ ऐसे हैं जिन तक केवल ब्रह्मोसमाज की पहुँच हो सकती है। इसी तरह ऐसे लोग भी हैं जिन तक केवल वैष्णव ही पहुँच सकते हैं। मुझे उन लोगों में दोष निकालने का क्या अधिकार प्राप्त है जो उस शक्ति और उस आनंद की परवाह नहीं करते कि जो मेरे निश्चय वा विश्वास से प्राप्त होते हैं? मुझे या तुम्हें क्यों यह प्रयत्न करना चाहिए कि हम ही हितैषियों और प्रशंसकों को पाने के इजारेदार हैं। मेरा कर्तव्य तो यह है कि मैं सेवा करूँ; हां, उन सब की सेवा करूँ जो प्रेम करने वाले और घृणा करने वाले हैं। माँ उन्हीं बच्चों से प्रीति करती है जो सब से कमजोर होते हैं।"

आनंद का स्रोत—स्वामी जी में चौथा गुण यह था कि वह आनंद और प्रसन्नता का स्रोत थे। वह उन पाषाण हृदय और अहंकारी साधुओं से सहानुभूति नहीं रखते थे, जो प्रत्येक व्यक्ति से कि जो तपस्या करने-योग्य नहीं, घृणा करते हैं। वह ऐसी कठिनाई और कष्ट को सहन करनेके लिये सदैव तत्पर रहते थे जिसको बहुत कम लोग सहन कर सकते हैं। किंतु इसके विषय में कोई घमण्ड नहीं करते थे, इसके अतिरिक्त वह त्याग के आनंद-पूर्ण पक्ष की ओर सदैव झुकते थे और इस आनंद के मुकाबले में जो आत्मसमर्पण से मानवी हृदय में उत्पन्न होता है

कष्टों को तुच्छ समझते और उनकी कुछ परवाह नहीं करते थे। वह अपने विचारों को बहुधा पद्य में प्रकट किया करते थे, और उन पद्यों में स्वर्ग-जीवन के विशेष आनंद को स्पष्ट किया करते थे। वह अपने हार्दिक भावों को रोकने का प्रयत्न नहीं करते थे, वरन् जोश की उमंग के साथ स्वयं भी बढ़े चले जाते थे, जिससे उनके शब्दों से आनंद का स्रोत बहने लगता था। उनकी आत्मा (चित्त) अपने कष्ट पर हँसती थी और दुःख से विह्वल नहीं होती थी।

कविता और वेदांत—अंतिम गुण स्वामी जी में यह था कि उनका चित्त कवियों-जैसा और मधुर था। वह उत्तम से उत्तम पाश्चात्य विचारों और उनके सोचने की शैलियों तक पहुँच जाते थे। उन्होंने तर्क शास्त्र और तत्त्वज्ञानके भीषण क्षेत्र में भी अपने चित्त की परीक्षा की। पाप और दुःख व्यावहारिक रूप में असत्य नहीं हैं और उनको तत्त्वज्ञान की आड़ में वा तर्क शास्त्र की रीति से असत्य सिद्ध करना उनका यह एक व्यर्थ प्रयत्न था क्योंकि दुःख को शास्त्र की सहायता से मिथ्या स्पष्ट करना व्यर्थ है और पाप को तत्त्वज्ञान की रीति से मिथ्या कहना मानों भयानक मार्ग पर पग रखना है। स्वामी रामतीर्थ ने इस कठिनता के विरुद्ध प्रयत्न तो किया किंतु इसे वेदांत के पद्य और माधुर्य से—और 'तत्त्वज्ञान छांटने' के स्थान पर 'दूसरों के साथ प्रेम करने' के उपदेश से—आच्छादित कर लिया। स्वामी रामतीर्थ के व्याख्यानों वा लेखों में अत्यन्त दुर्बल भाग वह है जहां वह भलाई और बुराई, पाप और पुण्य पर अपने विचार प्रकट करते हैं; और उत्तम भाग वह है जहां वह आत्म-समर्पण और त्याग पर युक्ति देते हैं।

अब मैं स्वामी रामतीर्थ के एक लेख की ओर ध्यान दिलाता हूँ जो आजकल के भारतवर्ष के लिये मानों एक संदेशा है। आप लिखते हैं—"मैं चाहता हूँ कि भारतवर्ष का बच्चा-बच्चा राष्ट्रीयता की ज़बरदस्त स्फूर्ति को फैलाने में सहायता दे। बचपन में से गुज़रे बिना कोई युवा अवस्था तक नहीं पहुँच सकता; और एक व्यक्ति को ईश्वर के साथ अपनी एकता उस समयतक अनुभूत नहीं हो सकती जब तक उसके शरीर की नस-नस में समस्त राष्ट्र की प्रीति उमंग न भर रही हो। ऐ भारतवर्ष के दृढ़-विश्वासी सुपुत्रो! शास्त्रों का ठीक उपयोग करो। तुम्हारे देश का धर्म यह चाहता है कि तुम जाति-पांति के कठिन बंधन और नियमों को ढीले कर दो, और मत मतान्तरों, संप्रदायोंके अन्तर पर राष्ट्रीय हितके विचारों को अधिकृत रक्खो। हमें निजी धर्म को राष्ट्रीय धर्म से श्रेष्ठतर कभी न समझना चाहिए।"

श्री स्वामी रामतीर्थ ।

भारतीय प्रोफैसर के वेष में

लाहौर १८९४

स्वामी रामतीर्थ ।

विजयिनी आध्यात्मिक शक्ति ।

पाँच फरवरी १९०३ को जी. जी. हाल में दिया हुआ व्याख्यान ।

प्रश्न—दूसरों की दृष्टि में हम जैसे हैं वैसे ही अपनी नज़र से अपने को देखना हम कैसे सीख सकते हैं?

उत्तर—दूसरों की दृष्टि में तुम जैसे हो वैसे ही तुम स्वयं भी यदि अपने को देखना सीख लो तो तुम्हारी कोई भलाई नहीं हो सकती। दूसरे हमें वैसा देखते हैं, जैसे हम नहीं हैं। वास्तव में हम जैसे हैं वैसा वे हमें नहीं देखते। यदि लोग तुम्हें ईश्वर समझते, यदि वे तुम्हारे भीतर ईश्वर देख सकते, यदि तुम्हें वे ब्रह्म समझ सकते, तो तुम्हें ठीक समझा होता। नातेदार, भाई, पिता, माता, मित्र सब के सब तुम्हारे कानों में भन्नाया करते हैं कि तुम वह वस्तु हो

जो वास्तव में तुम नहीं हो। कोई व्यक्ति तुम्हें पुत्र कहता है, दूसरे लोग भाई, शत्रु, मित्र इत्यादि कहते हैं। ये सब तुम को परिच्छिन्न करते हैं। एक मनुष्य तुम्हें सज्जन कहता है, वह तुम्हें परिच्छिन्न करता है। दूसरा मनुष्य तुम्हें दुर्जन कहता है, वह भी तुम्हें परिछिन्न करता है। एक और तुम्हारी खुशामद करता है या स्तुति करके तुम्हें फुला देता है, वह भी तुम्हें सीमावद्ध करता है। दूसरा तुम्हें और नीचे गिराता है या तुम्हारी निन्दा करता है, वह भी तुम्हारे बेड़ियाँ डालता है, तुम्हें परिमित करता और बाँधता है। भाग्यशाली है वह पुरुष जो इन प्रत्येक बन्धन के विरुद्ध खड़ा होकर अपने दैवत्व, अपने ईश्वरत्व का निरूपण करता है। जो मनुष्य अपने शुद्ध-आत्मा का वा अपने शुद्ध स्वरूप का अनुभव कर लेता है, जो मनुष्य सारे संसार के सामने तथा अपने इर्दगिर्द अन्य सब लोगों के सामने निडर खड़ा होकर अपने ईश्वरत्व का निरूपण कर सकता है और ईश्वर से अपनी अभेदता पहचान सकता है, वह इन सब लोगों की अवज्ञा कर सकने के समर्थ है। जिस क्षण तुम अपनी ईश्वरत्व के जतलाने के लिए खड़े होने को तैयार हो जाते हो, उसी क्षण सारा संसार तुम्हें ईश्वर मानने को बाधित होता है, सारी सृष्टि को तुम्हें परमात्मा मानना पड़ेगा ?

प्रश्न —कृपया हमें राजयोग का अर्थ समझाइये।

उत्तर —राजयोग का अर्थ है ध्यान या एकाग्रता का शाही साधन या राजमार्ग। यह शाब्दिक अर्थ है="राज" का अर्थ है शाही, और "योग" का अर्थ है मार्ग (सड़क)।

प्रश्न —वेदान्त शास्त्र के प्रचार का कोई सर्वोत्तम उपाय या ऐसा तरीका बताइये जिसे सब अंगीकार कर सकें।

उत्तर—वेदान्त शास्त्र के प्रचार का सब से अच्छा ढंग यही है कि उसके अनुसार जीवन बिताया जाय, और कोई राजमार्ग नहीं।

लोग सदा कोई न कोई ठोस या स्थूल पदार्थ पाना चाहते हैं, या ऐसी चीज चाहते हैं कि जिस पर उनका हाथ पड़ सके। स्थूल भौतिक पदार्थों को हथियाना या पकड़ना चाहते हैं, और वे सर्वदा विफल-मनोरथ होते हैं। तथापि वे उस भौतिकता को नहीं छोड़ना चाहते। वे खरी नगदी के रूप में कोई वस्तु चाहते हैं, वे रूप और रेखा को नहीं छोड़ना चाहते।

प्रिय बन्धु! ये खरी नगदी कहे जानेवाले रूप, ये भौतिक तत्व इन्द्रियों की भ्रान्ति के सिवाय और कुछ नहीं हैं। इन नाममात्र तत्त्वों और रूपों पर जो भरोसा करता है, उसे कभी सफलता नहीं होती। रूपों और परिच्छिन्न भावों पर निर्भर रहना कभी सफलता न लायगा। वह सफलता की कुंजी नहीं है। सूक्ष्म सिद्धान्त—सत्य पर निर्भर रहना—सफलता की कुंजी है। उसे ग्रहण करो, अनुभव करो, निदिध्यासन् करो और उसका व्यवहार करो, और ये नाम, ये तत्त्व, ये रूप और रेखा तुम्हें खोजते फिरेंगे।

इसका दृष्टान्त वे दो मनुष्य हैं जो एक बड़ी वेगवती नदी में बहे जारहे थे। एक मनुष्य ने तो एक बड़ा भारी लट्ठा पकड़ा और दूसरे ने एक पतला सा डोरा। जिस ने बड़ा लट्ठा पकड़ा था वह तो डूब गया और जिसने महीन सूत का सहारा लिया था वह बच गया। इसी तरह जो लोग बड़े बड़े सहारों पर भरोसा रखते हैं, जो बड़े नामों और दौलत पर आश्रय करते हैं वे अन्त में विफल होंगे।

सत्य के सूक्ष्म तागे पर, वास्तविकता के महीन तागे पर आश्रय करो। यदि तुम्हें अपनी ईश्वरत्व का बोध हो जाय, यदि तुम्हें अपने ईश्वरत्व का अनुभव हो जाय, तो फिर तुम चाहे सघन वनों में या भीड़ से भरी गलियों में कहीं भी रहो, कोई परवाह नहीं। वह सत्य का अनुभव हरेक वस्तु का रूपान्तर कर देगा, समग्र जगत को बदल देगा।

यह एक मेज़ है। कल्पना करो कि तुम इसे हटाना चाहते हो। यदि तुम किसी कोने से भी ज़ोर लगाओ, यदि मेज़ का कोई भी कोना तुम पकड़ लो, अथवा किसी भी ओर से पकड़ो तो तुम उसे सरका सकते हो, मेज़ हट जायगी। सारी दुनिया एक बड़े ठोस पदार्थ के समान है, और तुम्हारा शरीर इस दुनिया रूपी मेज़ का एक कोना या एक बिन्दु है। यदि आप इस अकेले बिन्दु को पकड़ लें, यदि आप इसे उठाकर तान दें, यदि आप इसे ईश्वर कहें, यदि आप इसे परमात्मा समझें, यदि यह अकेला बिन्दु ईश्वर में मानों समा जाय, यदि यह अकेला बिन्दु इस निश्चय बल से उठा दिया जाय, तो सारी दुनिया खिंच जायगी, सारी दुनिया सरक जायगी, क्योंकि सारा संसार मेज़ की तरह ठोस पदार्थ है। अपने व्यक्तित्व को तान दीजिये और आप सारी दुनिया को तान देंगे संगठनों में, या बड़ी २ संस्थाओं में, महान् मठों और उनके प्रचारक दलों में भरोसा करना बड़ी ही मूर्खता है, भयंकर भूल है। यह भयंकर भूल है, विफलता के सिवाय और इसमें कुछ भी हाथ न आवेगा, और आज नहीं तो कल्ह दुनिया की समझ में यह आजायगा। इसी प्रकार जो लोग केवल एक शरीर पर भरोसा करते हैं, संगठनों और सभाओं पर नहीं, वही लोग सारे संसार को बदल देते हैं। सभाओं और

संघों से जिन लोगों का सम्बन्ध है, वे रुपये जमा करते हैं, भवन बनाते हैं, कपड़े ख़रीदते हैं, परन्तु ऐसी विजय आध्यात्मिक वृद्धि नहीं है।

जंगलों में सियार हमेशा बड़ी जमात जोड़ते हैं, बड़ी सभायें रचते हैं, सदा बहुत बड़ी संख्याओं में मिलते हैं, एक साथ उठते बैठते हैं और हुआते (चीखते) भी एक साथ ही हैं। वे बड़े २ झुण्डों में होते हैं और बड़ा शोर मचाते हैं। इसी भांति भेड़ें भी अपने झुण्ड पर भरोसा करती हैं, वे इकट्ठी होती और झुण्ड बनाती हैं। परन्तु सियार या भेड़ियाँ क्या खड़ी होकर शत्रु का सामना कर सकती हैं? नहीं, नहीं। क्या तुमने कभी सिंहों को दल बाँध कर रहते सुना है? एक बड़ी संख्या में सिंहों का यात्रा करना कभी तुमने पढ़ा है? कभी उनको समाज बनाते या जमात या झुण्ड जोड़ते भी सुना है?

गीध (बाज़) पक्षियों के राजा होते हैं। क्या वे सभायें रचते हैं? कदापि नहीं। नन्ही और छोटी २ चिड़ियाँ ही साथ उड़ती हैं। गीध (बाज़) और सिंह अकेले रहते हैं। परन्तु एकही बाज़ आपकी छोटी २ चिड़ियों के अनेकों समूहों को भगा दे सकता है।

हाथी जमात जोड़ते हैं, वे बड़ी संख्या में भ्रमण करते हैं, क्योंकि उनका स्वभाव मिलने जुलने का होता है। यूथ में रहना उनका शील है, वे विराट शरीर के जन्तु होते हैं, किन्तु एक ही सिंह आकर हाथियों के समग्र समूह को परास्त कर तितर-बितर कर देता है। संघों या समूहों पर न भरोसा करो। अपने आप भीतर से शक्तिशाली बनाना हरेक का और सब का कर्त्तव्य है। अतएव वेदान्त को फैलाने

का सब से अच्छा उपाय यही है कि वेदान्त को व्यवहार में लाया जाय, चाहे अकेला हो मनुष्य, चाहे दूसरों के बीच में। वेदान्त पर अमल करो हवा उस वेदान्त को ग्रहण करने को विवश होगी, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, आकाश सभी उसे ग्रहण करने को बाध्य होंगे और उसका प्रचार होगा।

ईसा ने क्या कोई जत्था बनाया था? नहीं, नहीं। बिचारा अकेला ही रहा। शङ्कराचार्य्य ने कोई जत्था बनाया था? नहीं, बिचारा अकेलाही रहा। प्रत्येक प्राणी को अवश्य अकेले रहना चाहिये,अकेले खड़े होना चाहिये,हरेक को अपने भीतर परमेश्वर का बोध और साक्षात्कार करना चाहिये। जिस क्षण तुम्हें अभ्यन्तरात्मा का बोध हो जायगा, जिस क्षण तुम्हें उसका अनुभव हो जायगा, और दैवी जीवन बिताने लगोगे, उसी क्षण वेदान्त तुम्हारे भीतर से वैसे ही फूट निकलेगा जैसे सूर्य्य से प्रकाश।

याद रक्खो, तुम्हें ध्यान रहे, कि सुधार करने के ये सब उपाय, मानव जाति को सुधारने के ये सब यत्न, जिनका आधार धन पर है, अथवा जो धन या बाहरी सहायता पर आश्रय करते हैं, या जो दूसरों से किसी बात की आकांक्षा करते हैं,ये सब उपाय, जो दूसरों से माँगने के हैं, सब के सब असफलता में समाप्त होते हैं.यही नियम है। केवल भीतर की परम और अनन्त शक्तिका आश्रय करो। और बाहरी सहायता जब तुम्हें ढूँढ़ती हुई आवे तो उसे स्वीकार करने की कृपा करो। यदि बाहरी सहायतायें आपकी रंगरूट,आप की चेलियां बनने को तैयार हों तो अस्वीकार न करना,आपकी कृपा होगी। यह ठीक मानिये कि, ज्यों ही आप उनका आश्रय करेंगे वे आपको छोड़ देंगी, आपको त्याग देंगी। यही नियम है।

बाहरी मदद पर कभी भरोसा न करो। केवल अपने पर, वा अपने अन्तरात्मा पर भरोसा करो। यही आवश्यक है और कुछ नहीं। ये जो बड़े २ रूप लोगों ने धारण किये हैं, ये जो सब लम्बी दुमदार उपाधियाँ हैं, ये सब विफल हैं। ये असली लक्ष्य खो बैठती हैं। इनसे किसी का भी छुटकारा नहीं होता, ये किसी व्यक्ति को भी स्वतंत्र नहीं बनातीं, ये कष्ट और पीड़ा पहुँचाती हैं।

एक मुर्दा लाश को लीजिए। बिजली से हम उसे जानदार कर सकते हैं। हम उसके ओठों को हरकतदार कर सकते हैं, हम उसकी भुजाओं को उठवा सकते हैं हम उसे इस ओर व उस ओर झुकवा सकते हैं। परन्तु इसका नाम ज़िन्दगी नहीं है। इसी प्रकार बाहर से जो मदद मिलती है, जो सम्पूर्ण शक्ति हमें दौलत से, वैभव से, वस्त्रों से प्राप्त होती है, समाचार पत्रों द्वारा जो खुशामद किसी की की जाती है, समाचार पत्रों द्वारा जो हमारी प्रशंसा होती है, चेलों और भक्तों से जो आदर हमें प्राप्त होता है, यह सब सहायता वैसी ही सहायता है जैसी बिजली द्वारा मुर्दा लाश में गति का उत्पन्न होना। इससे जीवन नहीं मिलता, इस से पीड़ा नहीं दूर होती, यह मुझे स्वाधीन और स्वतंत्र नहीं बनातीं। तुरही बजने से जिन्दगी नहीं आती। जिन्दगी बीज से बढ़ती है; भीतर से, न कि बाहर से। यह एक जीता जागता सजीव बीज छोटा सा गर्भ पिण्ड है। इस में जीवन है, यह भीतर से बढ़ेगा। इस में कुछ देर तो अवश्य लगेगी, परन्तु वह असली जीवन होगा न कि धोखे की टट्टी।

मुर्दा लाश को गतिशील बनाकर, उस से उसका हाथ या सिर आदि उठवा कर हम बिजली के तात्कालिक प्रभाव

और बड़े आश्चर्यमय परिणाम पैदा कर सकते हैं, परन्तु इसमें जिन्दगी कहाँ। हमें तो जिन्दगी चाहिए। इसी तरह राम कहता है, कि बीज बो दो, अपने कानों में सत्य और उसका कलरव भर जाने दो। एक बार बीज बो दिया जाने पर हमें उसके लिए हैरान होने की जरूरत नहीं। इसी भांति वेदान्त के प्रचार के लिए, वेदान्त के उपदेश के लिए, तुम्हें स्वयं सत्य स्वरूप की अवश्य प्राप्ति करना चाहिए। इस तरह बीजों का बोना हो जायगा, उनकी वृद्धि की चिन्ता मत करो। तुम्हारे बिना हैरान हुए वे बढ़ेंगे।

एक महर्षि था, उसका एक श्रद्धालु बड़ा भक्त था, वह बड़ा भक्त शिष्य था। जो रोज महर्षि के दर्शन करने जाया करता था। एक बार कुछ दिनों के लिये महर्षि कहीं चले गए और जब स्थान पर फिर लौटे तो उनका वह परम भक्त चेला किसी दिन भी न दिखाई दिया। दूसरे लोग आए और चेले की निरन्तर अनुपस्थिति पर उन्हों ने अवाज़ा कसा, और उस भक्त की शिकायत की जो पहले महात्मा जी के साथ बहुत रहा करता था। महात्मा ने मुस्करा कर कहा, "क्यों शिकायत करते हो, क्यों दोष निकालते हो; मेरे पास उसके आने की ज़रूरत ही क्या है, वह इस शरीर से अनुरक्त क्यों रहे ? मैं यह व्यक्तित्त्व नहीं हूँ, मैं यह शरीर नहीं हूँ। यदि उसने मुझे यह व्यक्ति ही समझा है, यदि उसने मुझे यह देह ही समझा है, तो वह स्वयं ही शूली चढ़ेगा। केवल उसे इस शुद्ध स्वरूप का जो मैं हूँ, इस सत्य स्वरूप का, इस ब्रह्म का, इस परम शक्ति का, जो मैं हूँ, अनुभव करने दो, मेरे उपदेशों के प्रति उसे सच्चा होने दो और वह मुक्त होगा, वह परमानन्द होगा"। फिर महात्मा ने कहा,

"घोड़ी जब एक बार गाभिन हो जाती है तो उसे फिर घोड़े के पास जाने की जरूरत नहीं होती। बीज डाल दिया गया और यथा समय बच्चा पैदा होगा"। महर्षि ने कहा, "इसी तरह, बीज बोये जा रहे हैं और मैं नतीजों के लिए परेशान नहीं हूँ। बीज नतीजे पैदा करेगा"।

इसी तरह, तुम सभाएँ करते रहो या नहीं, राम को क्या, राम का नाम चाहे तुम याद रक्खो या पैरों से कुचलो, इससे राम को क्या, तुम चाहे सराहो या कोसो, या इस देह की निन्दा करो, इससे राम को क्या। प्रत्येक क्षण बीज बोया जा रहा है, वह आप नतीजे पैदा करेगा। अपितु दुनिया या उसमें जो कुछ है उसके लिए हम हैरान क्यों हों। जिस क्षण हम संसारके सुधारक बन कर खड़े होते हैं उसी क्षण हम संसार के बिगाड़ने वाले बन जाते हैं।

ऐ वैद्य! पहिले अपनी चिकित्सा कर!

वेदान्त के अनुसार सम्पूर्ण संसार ईश्वर के सिवाय और कुछ नहीं है। समग्र संसार पूर्ण है, समग्र संसार ब्रह्म है, मेरा ही अपना आप है, समग्र संसार एक अद्वैत है। यदि यही बात है और फिर मैं सुधार का कोई उपाय ग्रहण करता हूँ, फिर मुझे यह समझ पड़ता है कि तुम पददलित (अत्यन्त पतित) हो, और फिर मुझे ऐसा दिखाई पड़ता है कि तुम तुच्छ अभिलाषाओं के कारण दुःखी और पीड़ित हो, तो मैं तुरन्त तुम्हें बिगाड़ रहा हूँ, क्योंकि मैं तुमको अपने से कोई भिन्न वस्तु समझ रहा हूं। इस लिये वेदान्त कहता है कि "ऐ सुधारको! ऐ सुधारकों का पद लेने वालो! तुम दुनिया को पापिनी समझते हो, तुम दुनिया को कुरूपा समझते हो और उसे गाली देते हो। दुनिया इतनी दीन

क्यों मानी जाय कि उसको तुम्हारी सहायता की जरूरत है? ईसा मसीह आया और उसने यथा शक्ति लोगों को उठाने वा प्रबुद्ध करने की चेष्टा की, परन्तु दुनिया का सुधार नहीं हुआ। भगवान् कृष्ण आये और जो कुछ कर सके किया। भगवान् बुद्ध आये और बहुतेरे तत्त्वज्ञानी आये, परन्तु आज भी अभी तक वही पीड़ा, वही दुःख और वही क्लेश है, संसार हम ज्यों का त्यों पाते हैं। आज क्या लोग पहिले से किसी तरह अधिक खुश हैं? क्या तुम्हारी रेलगाड़ियों, तुम्हारे तारों, तुम्हारे टेलीफोनों, तुम्हारे बड़े २ जहाजों, तुम्हारी समस्त महान् वैज्ञानिक रचनाओं ने लोगों को पहिले से अधिक सुखी बनाया है? बात ठीक उसी अपूर्णांक (fraction) के समान है जिसके अंश और हर (Numerator and Denominator) दोनों बढ़ा दिये गये हों, अपूर्णांक दूसरा मालूम पड़ने लगे, वह बढ़ा हुआ प्रतीत हो, परन्तु वस्तुतः वही अपूर्णांक सम अनुपात से बढ़ा हुआ होता है। यदि तुम्हारी आमदनी या सम्पत्ति बढ़ गई है तो तुम्हारी अभिलाषाएं भी तो बढ़ गई हैं। यह कुत्ते की दुम की तरह है। जितनी देर तुम उसे सीधी पकड़े रहोगे उतनी देर वह सीधी रहेगी, किन्तु ज्यों ही आप उसे हाथ से छोड़ेंगे, त्योंही वह फिर पहिले की सी ऐंठी हुई दिखाई देगी। इस तरह पर वह लोग जो सुधार करने की इच्छा से उठते या चलते हैं, जो लोग इस तरह पर ब्रह्माण्ड में गुल मचाते हैं. वे स्वयं धोखे में हैं। युवकों! याद रक्खो, संसार के संबंध में किसी काम को शुरू करके तुम बड़ी भूल करते हो। अपना आकर्षण-केन्द्र (centre of gravity) अपनेसे बाहर मत जमाओ। निश्चय से जानो और अनुभव करो अपने वास्तविक ईश्वरत्व का, जिस क्षण तुम ईश्वरत्वभाव से परि-

पूर्ण हो जाओगे, उसी क्षण अनायास सदा के लिए जीवन, शक्ति, और उत्साह की धारा बहने लगेगी। सत्य को फैलाने का यही उपाय है।

आर्कैमेडिस (Archimedes) कहा करता था, "मैं अखिल विश्व को हिला दे सकता हूं यदि मुझे कोई स्थिर बिन्दु (स्थल) मिल जाय"। परन्तु बेचारे को स्थिर बिन्दु कभी नहीं मिला। वह स्थिर बिन्दु तुम्हारे भीतर है, उसे पकड़ो, उसे बूझो, उसे निश्चयसे जानो, उसे प्राप्त करो, यह अनुभव करो कि मैं ब्रह्म हूं, मैं प्रभुओं का प्रभु हूं, अखिल न्यायाधीश हूं, अखिल सौदर्न्य हूं, सम्पूर्ण बल और शक्ति की योनि (मूल) हूं, अनुभव करो कि अखिल विश्व का मैं पति हूं, मैं वही (ब्रह्म) हूं; और अपने वास्तविक स्वरूप का यह अनुभव आप ही समग्र संसार जीत लेगा, संसार को जीवन देगा, और संसार को गतिशील बना देगा।

सूर्य अपना सब काम वेदान्त के अनुसार या वेदान्त के सिद्धान्तों पर किया करता है। वह समग्र संसार के जीवन और उद्योग का उत्पत्तिस्थान व मूल है। सूर्य वेदान्ती है। राम ने तुम्हें जो शिक्षा दी है उसी को मान कर सूर्य चलता है। सूर्य ऐसा ही करता है। वह संसार को अखिल जीवन, अखिल उद्योग शक्ति देता है, परन्तु अकर्त्ता-भाव से देता है, उसमें अहं मम भाव नहीं है, उसमें स्वार्थ परता नहीं है, उसमें आत्मश्लाघा नहीं है। वह अपने को उद्यम से परिपूर्ण रखता है; वह समस्त बल, समस्त उद्योग, समस्त तेज और समस्त चेष्टा है। इसलिये जब तुम उठते हो और सूर्योदय होता है, तो क्या वह अपने आगमन की कोई विशेष घोषणा करता है? क्या वह इसके सम्बन्ध में कोई

पुस्तक या पोथी लिखता है? क्या वह इस विषय में कोई हल्ला मचाता है? ओ नहीं, परन्तु तुम देखते हो कि (सूर्योदय से) समस्त भूमि, आपका यह समग्र संसार संजीवित हो जाता है, आपकी इस भूमि में जान आ जाती है। अहा! कितने धीरे धीरे, कितने क्रमशः, कितनी मन्दगामी से, परन्तु निश्चय पूर्वक प्रकृति जाग उठती है, नदियें जाग उठती हैं। आप जानते हैं रात को नदियां जम जाती हैं. किन्तु सूर्य आकर उन्हें गरमा देता है, उनको जीवन देता है. और वे बहने लगती हैं। नदियों और झीलों के तटों के गुलाब और पुष्प सूर्य की उष्ण और प्रिय किरणों से खिल उठते हैं।

फिर मनुष्यों के नेत्र-कमल खिल उठते हैं, अथवा दूसरे शब्दों में मनुष्य भी जाग पड़ते हैं और जीवन तथा उद्योगिता से भर जाते हैं। हवा डोलने लगती है, वायु जीवन मय और उद्योगशील हो जाती है, क्योंकि सूर्य में जीवन और कर्मण्यता है, और उसके द्वारा ही समस्त संसार में प्रकाश और उद्योग प्रवाहित होते हैं। संसार को संजीवित करने में, तुमको जगाने में, चिड़ियों को गवाने में. और फूलों को खिलाने में सूर्य अपनी वाहवाही (श्लाघा) का विचार भी नहीं करता। हरेक वस्तु उसके द्वारा होती है, क्योंकि वह अपने आप पर निर्भर है और अपने भीतरी जीवन पर निर्वाह करता है। यही सिद्धान्त है—अपने भीतरी जीवन पर निर्वाह करो, अपने अन्तरात्मा में स्थित हो जाओ, निश्चय से जानो कि तुम प्रकाशों के प्रकाश हो, प्रभुओं के प्रभु हो, अखिल न्याय, बल, और सौन्दर्य्य के नियन्ता हो, और सम्पूर्ण अस्तित्व तुम ही से है। ऐसा भान

करो, ऐसा निश्चय करो, इन आध्यात्मिक प्रयोगों को परखो और देखो।

छोटे लड़के, छोटे बच्चे को प्रफुल्लित और खुश रखने के लिए लोग क्या उपाय करते हैं? ये सब मूढ़ माता पिता बच्चों के शागिर्द बन जाते हैं। ये सब के सब बच्चे के पाठ याद करते हैं। माता पिता (बच्चों के) शिष्य क्योंकर हैं? वे बच्चों की भांति बोलना, बच्चों की तरह नाचना, बच्चों की तरह मुँह बनाना शुरू करते हैं। बच्चा, वह नन्हा सा उपद्रवी बालक उनके कंधों पर सवार होता है। बच्चा सरल जीवन बिताता है, बच्चा स्वतंत्र है, उसे किसी का भय नहीं है। तुम्हारे किसी भी डेमासथीन्स या बर्क (Demosthenes or Burkes) की अपेक्षा बच्चे के फैले हुए ओंठ अधिक आदेशक, अधिक प्रभावशाली, और अधिक प्रवर्तक होते हैं। उसकी बात माननी ही पड़ेगी। यह नन्हा सा उपद्रवी, जिसका शरीर अत्यन्त कोमल है, जिसके हाथ और अंग अत्यन्त नन्हें हैं, अपने में विश्वास रखता है, उसकी इच्छा पूरी ही होगी। वह दुर्बल होते हुए भी बलवान है। अपने में निश्चयात्मा होने के कारण वह अपने को ओछा नहीं होने देता। माता-पिता कभी २ अपनी सम्पत्ति बेच डालते हैं; बच्चे की, उस नन्हे से जालिम की भलाई के लिए सर्वस्व निछावर कर देते हैं; और धिक्कार है उस मनुष्य को जो उसकी आज्ञाओं का पालन नहीं करता। बच्चे की शक्ति का रहस्य वेदान्त है। जगत उसके लिए जगत नहीं है; चतुरता उसके लिए तुच्छ है, संपूर्ण शक्ति और परमानन्द से इतर उसके लिए कुछ भी नहीं है, सम्पूर्ण शक्ति उस नन्हे से सरल और मधुर बच्चे के भीतर है। यही लड़के की सफलता का रहस्य है।

इसी तरह वेदान्त को व्यवहार में लाओ, निश्चय से समझो और अनुभव करो कि मैं सर्व शक्तिमान परमेश्वर हूं, विश्व (ब्रह्माण्ड) का शासन कर्ता हूं, ईश्वरों का ईश्वर हूं, देवों का देव हूं, संसार के सर्व भूतों का अध्यक्ष और अधिष्ठाता हूं; निश्चय से बूझो और जानो, कि "मै परमार्थ तत्त्व हूं"; इसका साक्षात्कार करो और इसे व्यवहार में लाओ, फिर तुम्हें काफी चेले (अनुगामी) मिल जांयगे। बिना विज्ञापन दिये, बिना किसी बड़े आदमी की कृपा पात्र बने और बिना समाचारपत्रों की अनुग्रह दृष्टि के बच्चों को शिष्य मिल जाते हैं। जो कोई बच्चे की तरफ देखता है, वही चेला होजाता है। क्या यह यथार्थ नहीं है ?

वेदान्त को अमल में लाओ और तुम्हें यथेष्ट मनुष्य तुम्हारी बात सुनने को मिल जाँयगे। जब चन्द्रमा निकलता है तब उसके सौन्दर्य्य (शोभा) से आनन्द लेने वालों की कमी नहीं रहती। भारत में दूज के दिन सब लोग घरों से बाहर निकल आते हैं और चन्द्रमा की ओर देखते हैं और उस के भीतर चेतन देवकी उपासना करते हैं। यह तिथि द्वितीया कहलाती है, जिसका अभिप्राय है "आनन्द का दिन"। उस दिन लोग अच्छा भोजन करते हैं, मित्रों और सम्बन्धियों से मिलते जुलते हैं और मौज उड़ाते हैं।

अपने हृदयों में चन्द्रोदय होने दो और कार्य सम्पादन विधि के लिए व्यथित मत हो। उपाय और साधन तुम्हें खोज लेंगे, उनको तुम्हें खोजना पड़ेगा। जब गुलाब खिलता है तब भौंरों की कमी नहीं रहती। जहाँ शहद (मधु) होगा वहाँ चींटयां पहुँच ही जाँयगी।

इसी तरह केवल अपने हृदयों में मधु पैदा करने की

चिन्ता करो; ज्ञान के पूर्ण खिले हुए गुलाबों को अपने भीतर उत्पन्न करो; तब सब आजायंगे, तुम्हें किसी की आवश्यकता नहीं रहेगी. तुम्हें किसी प्रकार का अभाव नहीं रहेगा; यदि तुम्हें किसी वस्तु की आवश्यकता भी होगी तो वह आत्म साक्षात्कार की. आत्मानुभव की; तब भी जब तुम इससे पीछे हटोगे तो सब पदार्थ तुम्हें छोड़ जाँयगे। जब तुम ने अपने परमात्मा देवत्व का दृढ़ निश्चय से आश्रय कर लिया, जब तुमने उसे खूब जान लिया, और जब तुम जीवन में उसे व्यवहार में ले आवोगे, तब सारा संसार कुत्ते के समान तुम्हारे पैर चाटने की इच्छा करेगा। संसार के पीछे २ मत दौड़ो। सम्पूर्ण शक्ति की कुंजी (रहस्य) तुम्हारे भीतर है, अन्यत्र कहीं नहीं है।

यहां कैलीफोर्निया में शास्ता झरने (चश्मे) हैं। कहा जाता है कि उनका जल बड़ा ही उत्तम है। हर मनुष्य वहां जाना चाहता है। शास्ता चश्मों को दर्शकों की चिन्ता नहीं होनी चाहिए. उनको किसी प्रकारकी घोषणाएँ नहीं जारी करनी चाहिए, उन्हें लोगों के पास कोई विज्ञापन भेजने की ज़रूरत नहीं। लोग स्वयं उन्हें ढूँढ़ लेंगे और ढूढ़ने को बाद्धय होंगे।

इसी तरह जिस घड़ी ज्ञान, जीवन, पवित्रता तथा प्रेम के शुद्ध और ताजे झरने तुम्हारे हृदय से उमड़ने लगेंगे, उसी घड़ी मानो शास्ता चश्में तुम्हारे भीतर मौजूद होंगे, तब दर्शक और लोग तुम्हें ढूँढ़ निकालेंगे। यह अपरिवर्तनीय और अटल नियम है। आवश्यकता केवल इस बात की है कि वे चश्में तुम्हारे अन्दर जारी हों फिर चाहे तुम एक स्थान पर रहो या भ्रमण करते रहो। अपने

भीतर सत्य और परमार्थ की निष्ठा होने के बाद यदि तुम एक स्थान पर रहे तो लोग तुम्हारे पास वहीं आवेंगे यदि तुम घूमते रहे तो तुम्हें ढूँढ़ेंगे। बाहरी वर्ताव पर कुछ भी निर्भर नहीं है उन चश्मों को अपने भीतर जारी करने का एक मात्र उपाय यही है कि आत्मनिष्ठा की धारा निर्विघ्न और स्वतंत्र तुम्हारे अन्दर बहने लगे।

कैंट (Kant) के बारे में कहा जाता है कि उसे अपनी जन्म-तिथि नहीं मालूम थी किन्तु सारे संसार में वह विख्यात है। एक स्थान पर रहना हीसफलता का रहस्य नहीं है। आध्यात्मीक शक्तिका आवाहन करो और फिर चाहे पलंग ही पर पड़े रहो। तब धिक्कार है संसार को यदि वह तुमसे सत्य को प्राप्त करने के लिये न आवे।

जब कोई मजिस्ट्रेट आकर अदालत में अपने आसन पर बैठ जाता है, तब सब वादी प्रतिवादी, वकील और गवाह आप से आप आजाते हैं, मजिस्ट्रट को उन्हें बुलवाने का कष्ट उठाना नहीं पड़ता, उसे अदालत के कमरे में कुर्सियों को यथा स्थान रखने की चिन्ता करनी नहीं पड़ती, उसे अदालत के कमरे के चित्र-पटों को यथास्थान रखने का झंझट करना नहीं पड़ता, उसे वादियों या प्रतिवादियों या गवाहों को आमंत्रण भेजने के लिये हैरान होना नहीं पड़ता; इन सब बातों का प्रबन्ध दूसरे कर लेंगे। राम कहता है वैकुण्ठ के इस अधिपत्व को प्राप्त कीजिये। अपने भीतरी दैवत्व (सम्राट) पर अपना अधिकार जमाइये। हे परम देव! हे परम प्रभु! ऐ मनुष्य! तुम तो चक्रवर्ती हो और तदनुकूल अपने गौरव में विचरो, अपने दिव्य ऐश्वर्य में चलो फिरो, तुम तो देव हो, अपने दिव्य भाव में

अग्रसर हो। अपने व्यापार विषयक मामलों के लिए, अपनी पोशाक के लिए, अपने रेल-मार्ग, सम्पत्ति और घर के लिये व्यग्र मत हो। इन चीजों के लिये चिन्ता मत करो, यह बाह्य प्रपञ्च का कार्य है; यह उनका काम है जो अधिकारापन्न हैं। आओ, अपने देव भाव का, अपने ईश्वरभाव का अनुभव करो। अपने को सूर्यों का भी सूर्य अनुभव करो। और चन्द्रमा, नक्षत्र, तथा देवदूत तुम्हारी टहल करेंगे। उन्हें ऐसा करना पड़ेगा। यही नियम है। यही सत्य है। और इसे सफलता की कुंजी बता कर वेदान्त इसी का प्रचार करता है।

जिस क्षण तुम अपने दिव्य स्वरूप में स्थित होगे, जिस क्षण तुम अपने असली स्वरूप का अनुभव करोगे, जिस क्षण तुम अपने वास्तविक स्वरूप को जान लोगे, उसी क्षण तुम्हारी शक्ति महान होगी, उसी क्षण संसार तुम्हारी ढूंढ में लगेगा उसी क्षण विश्व तुम्हारी कृपा की भीख मांगेगा।

और देखिये, लोगों का यह समझना संसार की बड़ी भारी भूल है कि सफलता नियमों और बनावटी कानूनों से प्राप्त की जा सकती है, या सफलता सर्वशक्तिमान धन पर, उपकार, सहायता, रुपए-पैसे, नौकरों, मित्रों और सम्बन्धियों पर निर्भर है। अरे, इसी तरह तो वे अपने को चौपट करते हैं। इस तरह के प्रयत्न वैसे ही हैं जैसे बुलबुल को बनावटी तौर पर गवाने की चेष्टा करना।

फाख़्ता (कपोत) को ही ले लीजिए। यदि हिमालय के ऊंचे से ऊंचे सरू वृक्ष पर वह बैठने पावे तो स्वतः प्रेरित होगी और मधुर ध्वनियां उससे खुदबखुद निकलने लगेंगी। हिमालय की मनोरम चोटियों पर, गुलाबों पर बैठी हुई बुल-

बुल मधुर तान से गाती है, ऊंचे स्वरों में अलापती है। राम कहता है, ठीक इसी तरह जब तुम आत्म-साक्षात्कार की मनोरम चोटियों पर बैठ जाते हो, जब तुम वहां निश्चिन्त रूप से जम जाते हो, जब तुम अपने दिव्य स्वरूप में दृढता से घर कर लेते हो: तब तुम्हारे दिव्य स्वरूप द्वारा तुम्हारे कार्य, तुम्हारा श्रेष्ठ जीवन, तुम्हारा शुद्ध आचरण, तुम्हारे उत्कृष्ट कर्म, अवश्य अंकुरित होते हैं, आप से आप फूट निकलते हैं, उगते हैं पल्लवित होते हैं, यही ढंग है।

सुधारक लोग नियम और कानून बनाकर महा पुरुष व प्रभाव शाली पुरुष पैदा किया चाहते हैं और वे उनको आदेश दिया चाहते हैं तथा अपने को दूसरों का परीक्षक बनाते हैं। यह अस्वाभाविक है, इससे काम न चलेगा।

लोग कहते हैं 'अरे! हम तो अभ्यास चाहते हैं,' राम कहता है, भाई! अभ्यास आवेगा कहां से? देखो बाहरी कामों के द्वारा यह अभ्यास करना बुलबुल के बनावटी गाने के समान है। बुलबुल का गला पकड़ कर और उससे यह कहकर कि 'बुलबुल मेरे पास आजा और गा' हम बुलबुल के मधुर गीत नहीं निकलवा सकते। जिस क्षण बुलबुल या फाख़ता स्वतंत्र होती है। उसी क्षण बुलबुल गाती है और फ़ाख़ता गुटकती है। इससे जिस क्षण तुम अपने केन्द्र में स्थित होते हो. जिस क्षण तुम अपने ब्रह्मत्व में विराजमान होते हो, जिस क्षण तुम अपने (ईश्वरत्व) में घर कर बैठते हो. जिस क्षण तुम आत्मानुभव के ऊंचे ऊंचे शिखरों पर पहुँच जाते हो: उसी क्षण तुम्हारे द्वारा उत्तम अभ्यास शूरवीरता के कार्य उसी तरह पर उमगने लगते हैं जिस प्रकार फ़ाख़ता

कूकती है और बुलबुल मधुर मधुर गाती है जबकि वह ठीक जगह पर बैठी होती है; यही सच्चा सीधा मार्ग है।

कल्पना करो कि यहां पर एक लोहे का टुकड़ा है और हम लोहे के इस छोटे से टुकड़े को चुम्बक बना कर लोहे के दूसरे टुकड़ों को इसके पास घसीटना चाहते हैं। यह हम कैसे कर सकते हैं? केवल लोहे के उस छोटे टुकड़े को आकर्षण-शक्ति-सम्पन्न बनाने से। यही असली उपाय है कि लोहे का यह छोटा टुकड़ा ऐसा बनाया जाय कि लोहे के दूसरे छोटे टुकड़ों को खींच ले और पकड़ले। अभी यह छोटा लोहे का टुकड़ा लोहे के दूसरे छोटे टुकड़े को पकड़ नहीं सकता, और ऐसा कर सकने की योग्यता उसमें उत्पन्न करने के लिए हमें पहले उसे चुम्बक में बदल देना होगा। अब हम यह कल्पना करते हैं कि यहां पर एक चुम्बक है, अब इस चुम्बक के साथ पहले लोहे के टुकड़े को युक्त कीजिये जिससे पहला लोहे का टुकड़ा भी चुम्बक हो जाय और दूसरे लोहे के टुकड़े को खींच व पकड़ सके। अब यह पहला टुकड़ा चुम्बक में बदल दिया गया, परन्तु सच्चे चुम्बक से आप इस पहले टुकड़े को अलग कीजिये तो इस की ताकत जाती रहेगी और वह टुकड़ा लोहेके दूसरे टुकड़ेको न पकड़ सकेगा। याद रहे, जब तक लोहे का पहला टुकड़ा सच्चे चुम्बक से जुड़ा हुआ या सम्बद्ध है, तब तक वह भी चुम्बक है, तब तक उसमें चुम्बक के सब गुण मौजूद हैं, और लोहे के चाहे जितने टुकड़े हों उनको थाम सकता है। जिस क्षण हम इस पहले लोह-खण्ड का सम्बन्ध असली चुम्बक से तोड़ देते हैं, उसी समय इस की ताकत जाती रहती है, और यह लोहे के दूसरे टुकड़ों को पकड़ रखने के असमर्थ हो जाता है।

इसी तरह कल्पना करलो, यहां एक शरीर है, हम उसे मानो ईसा कहते हैं। वह बड़ा अच्छा शुद्ध मनुष्य था। वह क्या है? अपने जीवन के पहले तीस वर्षों में वह लोहे के इस छोटे टुकड़े के तुल्य था, कोई उसे नहीं जानता था, वह एक बढ़ई का लड़का था, वह बड़ा गरीब लड़का था और अज्ञात माता का पुत्र था, वह हेय वा घृणित समझा जाता था, अब इस लोहे के टुकड़े ने अपने वास्तविक स्वरूप आत्मा से अर्थात् आकर्षण-शक्ति के मूल रूप चुम्बक से, सम्पूर्ण जीवन और शक्ति के केन्द्र से अपना सम्बन्ध जोड़ लिया। उसने परमात्मा से, सत्य स्वरूप से, आत्म साक्षात्कार तथा शक्ति स्वरूप से अपना नाता जोड़ लिया। फिर उसका क्या हुआ? लोहेका वह टुकड़ा भी आकर्षण-शक्ति से सम्पन्न हो गया, वह एक चुम्बक हो गया, और लोग उसकी ओर खिंच आये, चेले और बहुतेरे लोग उसकी ओर आकृष्ट हुए, स्वभावतः वे लोग उसके सामने झुकने लगे। उसके जीवन के अन्तिम दिनों में ऐसा समय आया कि ज्यों ही ईसा का शरीर, जिसे लोहे का टुकड़ा कहा गया है, चुम्बक से अर्थात् आत्मा से वियुक्त होगया, त्यों ही लोहे के जितने टुकड़े इसमें लगे हुए थे सब के सब गिर गये, उसके सब चेलों ने उसे छोड़ दिया; जेरूसलेम के उन्हीं लोगों ने जो उसे पहले पूजते और प्यार करते थे, जिन्हों ने पहले उसका शाही स्वागत किया था, जिन्हों ने उसके सम्मान के लिए नगरों को सजाया था, सब ने उसे छोड़ दिया। उसकी ताकत ठीक उसी तरह जाती रही जैसे लोहे के टुकड़े से चुम्बक की ताकत हटा लेने से लोहे के टुकड़े की जाती रहती है; अब उसमें चुम्बक के गुण बाकी नहीं रहे। जब उसके चेलों ने उसे छोड़ दिया, जब उन ग्यारहों ने उसे छोड़ दिया और

लोग उस से ऐसे फिर गये कि उन्हों ने उससे बदला लेना चाहा, बल्कि उसे सूली देना चाहा; उसी समय ईसा ने कहा था, "ऐ पिता, तू ने मुझे क्यों छोड़ दिया है"। इससे स्पष्ट होता है कि सम्बन्ध टूट गया था। देखो, ईसा की ज़िन्दगी तुम्हें क्या सिखाती है। वह सिखाती है कि ईसा की समग्र शक्ति और नेकी, इस सच्ची आत्मा या चुम्बक से सम्बन्ध या संयोग रखने में थी। जब ईसा का स्थूल शरीर सच्ची आत्मा या चुम्बक से संलग्न था, तब ईसा का शरीर भी चुम्बक था। परन्तु जब ईसा का शरीर सच्ची आत्मा या चुम्बक से अलग होगया, तब उसकी शक्ति जाती रही, और उसके चेलों ने तथा अनुयायियों ने उसे त्याग दिया। अपनी मृत्यु के पहले ईसा ने आत्मा से पुनः संयोग स्थापित कर लिया था। आप जानते हैं, कि सूली मिलने के समय ईसा की मृत्यु नहीं हुई थी, यह तथ्य सिद्ध किया जा सकता है। वह समाधि की अवस्था में था, जिस अवस्था में प्राणों की सब चेष्टाएँ (व्यापार) रुक जाती हैं, जब नाड़ी की गति बन्द हो जाती है, जब मानो रक्त नसों को छोड़ जाता है, जब जीवन का कोई भी लक्षण नहीं रह जाता, जब शरीर को मानो सूली दे दी जाती है। ईसा ने तीन दिन तक अपने को इसी हालत में रक्खा और योगी की भाँति पुनः जीवन को प्राप्त किया और भाग कर काश्मीर में फिर आकर रहने लगा। राम काश्मीर गया है, और ईसा के वहाँ रहने के बहुत से चिन्ह उसे मिले हैं। तब तक काश्मीर में ईसाइयों की किसी सम्प्रदाय का कोई दल नहीं था। वहां बहुत से स्थान ईसा के नाम से विख्यात हैं, ऐसे स्थान जहाँ ईसाई कभी नहीं आये थे। कुछ नगरों के भी वही नाम हैं जो जरूसलीम के उन अनेक नगरों के

हैं जिनमें से होकर ईसा गुज़रा था। वहाँ दो हज़ार वर्ष की पुरानी एक क़ब्र है। यह बड़ी पूज्य मानी जाती है और ईसा की कब्र कहलाती है। हिन्दुस्तानी में क्राइस्ट का काम ईसा है। ईसा के माने हैं राजकुमार। इस तरह के बहुत से ऐसे प्रमाण हैं जिनसे सिद्ध होता है कि ईसा भारत आया था, जिस भारत में उसने अपने उपदेशों की शिक्षा पाई थी।

इसके सिवाय, भारत में एक प्रकार का छूमंतर जादू की तरह लाभ पहुँचानेवाला मरहम है जिसे ईसा मरहम कहा जाता है। जो लोग इस मरहम को बनाते हैं उनका कहना है कि पुनः संजीवित होने के बाद यही मरहम ईसा के घावों में लगाया जाता था। और यह मरहम सब तरह के घावों को अच्छा करने में जादू का सा काम करता है।

ईसा भारत को लौट कर गया था, इस की गवाही बहुतायत से मिलती है। राम यहाँ उसका ब्यौरा न देगा। राम तुम से यह कह रहा है कि ईसाने जब शरीर चुम्बक रूपी ईश्वर से संलग्न कर लिया, तब सारा संसार उसकी ओर खिंच गया। यह सम्बन्ध टूटा कैसे ? अनेक कारण थे। बाहरी प्रभाव, लोगों से बहुत मिलना-जुलना, और आध्यात्मिक उत्कर्ष (उन्नत्ति की शिखरों) से बहुत काल तक अलग रहना, इत्यादि। इन्हीं बातों से हम उस परम शक्ति से दूर गिर जाते हैं। आप को मालूम है कि जन समूह को छोड़कर ईसा को पहाड़ की कन्दराओं में शरण लेना पड़ी थी। और अपने एक चेले से ईसा ने कहा था. "मुझे मालूम होता है कि मेरी शक्ति निकल गई, किसने मुझे छू लिया?" । इस तरह पर लोगों के साथ बहुत काल तक रहने और बहुत दिनों तक आध्यात्मिकता की

उन्नति से रहित रहने के कारण यह सम्बन्ध टूटा था। यह बिलकुल स्वाभाविक है, बिलकुल मनुष्योचित है। ईसा के दोषों से भी हमारा हित होता है। हरेक व्यक्ति की जीवनी से हमें लाभ पहुंचता है यदि हम उसका ठीक २ परिशीलन करें। किसी भी मनुष्य की जीवनी के यथार्थ परिशीलन से आप उतनाही लाभ उठा सकते हैं जितना कि ईसा की जीवनी से। राम कहता है कि जिस क्षण तुम अपने को आत्मा से अलग कर लेते हो, उसी क्षण तुम कुछ नहीं रह जाते। अपने को परमेश्वर में लीन रक्खो, अपने को परमेश्वर से अभेद रक्खो, उन आध्यात्मिक उन्नति की उच्च शिखरों से नीचे न उतरो. सत्य को अनुभव करो, फिर तुम वैसे ही चुम्बक हो जैसे लोहे का टुकड़ा चुम्बक है। तुम्हारा शरीर वैसे ही सजीव होजाता है जैसे कि एक छोटे बच्चे को उसका मांस सजीव होता है, उसके सारे अश्रु जिसे उसका तरल शोक कहा जा सकता है वास्तविक होते हैं।

इसी तरह यदि परमेश्वर से तुम्हारी अभिन्नता है, तो तुम पवित्र हो, तुम चुम्बकी शक्ति सम्पन्न लोहे का टुकड़ा हो, और चुम्बक से संलग्न रहते हुए तुम चुम्बक हो जाते हो। यह बात हमें उसी प्रश्न के दूसरे रूप की ओर लेजाती है। हमने मूल स्रोत को, मूल कारण को, शक्ति की वास्तविक कुंजी को बताया है। परन्तु लोग इसे कुछ और ही समझ लेते हैं। जैसे बच्चे में वास्तविक शक्ति सत्य-आत्मा अर्थात् अपने स्वरूप की उपलब्धि से आती है, किन्तु लोग उसके शरीर को महत्व प्रदान करदेते हैं, और बच्चे के जीवन में शक्ति के इस वास्तविक

स्रोत को उन्नत करने के बदले लोग बच्चे के जीवन को पद्दलित बनालेते हैं। ईसा की जीवनी पढ़ो, और जैसा ईसा ने किया था वैसाही तुम भी करो। ईसा के शरीर पर नहीं बल्कि ईसा की आत्मा पर निर्भर करो, अपने भीतर आत्मा पर निर्भर करो। ईसा होने का सच्चा मार्ग यही है।

वेदान्त भारतवासियों के लिये ही नहीं है। वह ईसाइयों के लिये भी वैसाही है जैसा कि हिन्दुओं के लिए। वेदान्त की दृष्टि से ईसा के नाम से मनुष्य की मुक्ति कैसे होती है, यह समस्या कैसे हल होती है? यह एक कथा से वर्णन किया जा सकता है। एक माता थी, वह बहुत समझ-दार नहीं थी। उसने अपने बच्चे में विश्वास पैदा कर दिया कि बैठक से मिली हुई कोठरी में एक प्रेत रहता है, जो बड़ा बिकट है, कोई बड़ी भयंकर चीज़ है। बच्चा बहुत डर गया और उस कोठरी में पैर रखते सहमता था। एक दिन शाम को जब लड़के का बाप अपने दफ्तर से लौट कर आया तो उसने लड़के से उस कोठरी से एक वस्तु ले आने को कहा। उसे इस समय उस वस्तु की ज़रूरत थी। लड़का डरा हुआ था। अंधेरी कोठरी में पैर रखने की उसकी हिम्मत नहीं पड़ी। और उसने दौड़ कर बाप से कहा, "दादा! मैं उस कोठरी में न जाऊंगा, क्योंकि उसमें एक बड़ा भयंकर प्रेत, पिशाच है, जिस से मैं डरता हूं"। बाप को यह बात नहीं पसन्द आई। वह बोला "नहीं, नहीं, बेटा! वहां न प्रेत है, न पिशाच है, वहां ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो तुम्हें हानि पहुंचा सके, इस लिए जाओ और मैं जो चीज़ मांगता हूं वह ले आओ; किन्तु लड़का न टसका। बाप बड़ा चतुर था, उसने एक उपाय सोचा; इस रोग की,

इस अंध विश्वास की, जो लड़के में जम गया था, एक दवा तजवीज़ की। पिता ने नौकर को अपने पास बुलाया और उसके कान में कुछ चुपके से कहा। जिस कमरे में बाप था उससे नौकर चला गया और पीछे के एक दरवाज़े से बगल वाली कोठरी में जो भूतखाना मान लीगई थी, घुस गया। उसने एक तकिया ले ली और उसके एक कोने पर एक काला कपड़ा डाल दिया। तकिया के जिस कोने पर काला कपड़ा पड़ा हुआ था उस कोने को कोठरी की एक खिड़की की एक दराज से बाहर निकाल दिया, और इस ढंग से बाहर निकाला कि वह विकट जान पड़ने लगा। लड़के का ध्यान उस ओर गया और उसे एक अद्भुत विकट वस्तु दिखाई पड़ी। बाप ने (तकिये के बाहर निकले हुये कोने की ओर दिखा कर) कहा, "यह तो कान सा जान पड़ता है। इस पर लड़के की फुर्तीली कल्पना-शक्ति ने तुरन्त जान लिया कि यह माने हुए प्रेत का कान है, और वह चीख उठा, "दादा, यह तो पिशाच का कान है, मैंने तो तुमसे कहा ही था कि इस घर में प्रेत रहते हैं, अब मेरी बात सच्ची होगई"। पिता ने कहा, "प्यारे पुत्र ! तुम्हारी बात ठीक है, पर हिम्मत करो और मर्द बनो, इस छड़ी को ले लो, और हम पिशाच का नाश कर देंगे"। आप जानते हैं, लड़के बड़े बीर हुआ करते हैं, उनमें बड़ा साहस होता है, वे हर काम की हिम्मत कर सकते हैं, और लड़के ने बाप की सुन्दर छड़ी उठा कर एक ज़ोर का हाथ मारा। एक शोर सुनाई पड़ा और कुछ मन्द सा रोना। इस पर अंधेरी कोठरी के भीतर वाले नौकर ने पिशाच के कल्पित कान को फिर कोठरी के भीतर खींच लिया। लड़का इससे प्रसन्न हुआ और दिलेरी से उसने गुल मचाया कि मैं प्रेत पर प्रबल

घड़ रहा हूं। पिता ने ताड़ी बजा कर उसका हौंसला बढ़ाया, उसे पानी पर चढ़ाया, उसकी तारीफ की और कहा, "मेरे प्यारे बेटे! तुम बड़े बहादुर हो, तुम तो बड़े ही दिलेर हो"। किन्तु जब पिता लड़के से इस तरह बात चीत कर रहा था तब दरार से या कोठरी के दरवाजे के बीच की झिरी से पिशाच के दोनों कान दिखाई पड़े। लड़का फिर उत्साहित किया गया और उसने पिशाच की तरफ बढ़कर, कल्पित पिशाच के शिर पर, चोट पर चोट जमानी शुरू की। उसने उसे बारम्बार पीटा और भीतर से रोने की आवाज़ आने लगी, और बाप ने कहा, "सुनो, बेटा! पिशाच परेशानी से रो रहा है; तुम जीत गये, तुम्हारी जय हुई"। लड़का कल्पित प्रेत को पीटता ही रहा और बाप ने उस तकिया को बाहर खींच लिया। पिता पुकार उठा, "ऐ बहादुर बेटे! तुमने पीट कर प्रेत को तकिया बना दिया, तुमने उसे तकिया में बदल दिया"। लड़के को सन्तोष होगया कि यह बात ठीक है; प्रेत, पिशाच, अथवा अन्ध विश्वास चला गया और लड़का बहादुर बन गया तथा प्रसन्नता से वह उछलने कूदने नाचने और गाने लगा। इसके बाद वह कोठरी में गया और जिस चीज़ की पिता को जरूरत थी वह ले आया। किन्तु क्या कोई समझदार बाप सयाने लड़के के लिए ऐसी दवा तजवीज़ करेगा? कभी नहीं। यह दवा छोटे बच्चों के लिए बहुत अच्छी है, परन्तु सयाने के लिए नहीं। उस छोटे लड़के की इस उपाय से भलाई हुई, इससे उसका काम चल गया, परन्तु सयाने लड़कों के लिए ऐसी दवा की जरूरत नहीं है। हर छोटे बच्चे की ऐसी कल्पनाओं या स्वप्नों को हम विताड़ित कर सकते हैं, यदि हम उनके लिए काफी समय दे सकें। अब

ध्यान दीजिये, वेदान्त कहता है कि इस प्रेतवाली कोठरी के मामले की तरह असली प्रेत लड़के द्वारा तकिया पीटे जाने से नहीं दूर हुआ। प्रेत के भाग जाने का असली कारण लड़के द्वारा तकिया का पीटा जाना नहीं है, बल्कि लड़के में इस विश्वास का प्रकट हो आना है कि कमरे में प्रेत नहीं है। लड़के को यह विश्वास करा दिया गया कि वहाँ प्रेत नहीं है; और वहाँ प्रेत था भी नहीं। लड़के की कल्पना के द्वारा प्रेत कोठरी में आया था वास्तव में प्रेत वहाँ कभी भी नहीं था। मिथ्या कल्पना ने कोठरी में प्रेत को ला बैठाया था, और इसी मिथ्या कल्पना को चंगा करने की ज़रूरत थी। सयाने लोगों की कल्पनाओं का दूसरा ही इलाज है।

लोग पहिले विश्वास करते हैं कि, "हमारा उद्धार नहीं हो सकता, हम स्वभावतः पापी हैं, हम उस भीषण नरक के किनारे पर हैं जिसमें हमें जाना है, भयंकर पापों का समूह हमें नीचे दबाये देता है, आदम के पाप के कारण हमारी प्रकृति पापिनी होगई, स्वभाव से ही हम पापी और संसारी हैं, हम दीन, घिसलनेवाले, और निर्बल जन्तु हैं।" कृपा कर के राम को साफ २ कहने के लिए क्षमा कीजियेगा। इंजील का एक भाग लोगों में विश्वास पैदा करता है कि उनकी प्रकृति पापिनी है। (इंजील के) प्राचीन संस्करण (ओल्ड टेस्टामेंट) ने इस संसार के विचारे ईसाइयों के अन्तः-करणों में यह बात जमा दी है; उसने तुम्हारे प्रकाशित हृदय कोष्ठकों में यही बैठा दिया है; उसने तुम्हारे मनों पर, तुम्हारे अखंडनीय आत्मा के कमरे अर्थात् अन्तः करण में पतन का प्रेत (घोस्ट आफदी फाल Ghost of the Fall), पापमय

प्रकृति, पददलित, नीच वा दीनात्मा का प्रेत अंकित कर दिया है। ये विचार लोगों के दिलों में बलात भरे गये; ऐसे विचार कि वे संसार में कुछ भी नहीं हैं, केवल तुच्छ जन्तु हैं, दीन कीट के सिवाय कुछ भी नहीं हैं, सचमुच और कुछ भी नहीं हैं सिवाय दीन-हीन कीड़ों-मकोड़ों के जो पवन और तूफान की दया पर निर्भर हैं और इस संसार में अशक्त हैं। पहले संसार के अन्तःकरणों में अंध-विश्वास का भूत बसा दिया गया। तब नया संस्करण (निउ टेस्टा मेण्ट New Testament) आया। राम द्वेष बुद्धि से नहीं कह रहा है। नवीन संस्करण में पिता ने भ्रान्त अंध विश्वास को हटाने की चेष्टा की, जिसे माता (प्राचीन संस्करण) ने लोगों में पैदा करा दिया था। नवीन संस्करण में सेन्ट पाल पिता आया और दुनिया के दिलों से इस भूत को हटाने की उसने पूरी कोशिश की। उसने इस भूत से उनका पीछा छुटाने की, उन्हें स्वतंत्र करने की, यथाशक्ति चेष्टा की। उसने कौनसा उपाय ग्रहण किया? राम कहता है, सेंट पाल ने ऐसा नहीं किया, किन्तु ईश्वर ने सेंट पाल के शरीर के द्वारा ऐसा किया और लोगों को बतलाया कि यह (छुटकारा उनका) कैसे हो सकता है। जन समाज को बतलाया गया कि, यह पाप, यह स्थूल पापी प्रकृति, मन की यह नीचता, अँधेरे में यह भटकना, यह पाप, यह पाप और सम्पूर्ण सत्यानाश का प्रेत, एक विशेष तरीके से भगाया जा सकता है। इस तरीके को उस (सेंट पाल) ने शुद्धि या मार्जन (बपतिस्मा Baptism) समझा। ईसाई होने से, सम्प्रदाय में शामिल होकर, वा प्रार्थनाओं में उपस्थित होने से, भूने सुअर को प्रसाद बनाने की प्रार्थना से, धर्माचार्यों को खूब खिलाने पिलाने से, ईसामसीह की पोशाक (बाना) पहनने से—इन सब कामों के करने से तुम्हारा

उद्धार हो जाता है और तुम्हारा नाम जीवन की पुस्तक में लिख जाता है। इस उपाय को ग्रहण करो; इन रीतियों को बरतो, जो तकिया को पीटने के समान हैं; ये काम करो, ईसा का नाम भजो, गिर्जाघर में गीत गाओ, उपासना वा प्रार्थना करो, पादड़ियों को दान दो, उनको खिला २ कर मोटा करो; इस रीति से तुम्हारा उद्धार हो जाता है। राम कहता है, कि इन कामों को करने से यदि लोगों को सजीव विश्वास की प्राप्ति हो जाय, यदि उनमें सजीव निश्चय पैदा हो जाय कि उनका उद्धार हो गया, तो सचमुच उनका उद्धार हो जाता है। राम कहता है कि यथार्थ में पक्का ईसाई अपने धर्म के नाम में इन कामों को करने के बाद यदि अपना उद्धार हुआ समझता है, तो अवश्य उसका उद्धार होगा, जिस तरह कि लड़के ने पिशाच को पीट कर तकिया बना देने का श्रम किया और फिर कमरे से भूत का अड्डा उखड़ गया, प्रेत, पिशाच वहाँ नहीं रह गया।

इसी तरह यदि आप ईसाई हैं, और अपने उद्धार का आप को दृढ़ विश्वास होता है, तो अवश्य आप का उद्धार हो जाता है। राम उन स्वतंत्रानन्दी विचारकों और नास्तिकों से सहमत नहीं है जो ईसाइयों के जीते जागते विश्वास को भ्रान्ति या गया बीता बताते हैं; ईसाई धर्म की निन्दा करने में राम का मत इन लोगों से नहीं मिलता। यदि आप का निश्चय, धर्म-विश्वास आप के मन को सहस देता और आप में यह धारणा दृढ़ करता है कि आप का उद्धार हो गया, तो ठीक आप का उद्धार हो जाता है। परन्तु साथ ही साथ राम कहता है कि दुनिया अब बच्चा नहीं रही, दुनिया अब सयाने लड़के की दशा में है, इस प्रकार के सिद्धान्त ने अब तक

कोटियों प्राणियों की रक्षा की है; परन्तु अब ऐसा अनुभव करने की चेष्टा करके भूत को आप के कमरों से हका देने का समय आगया है कि:—"आप की प्रकृति पापिनी नहीं है आप के कमरे में किसी प्रेत का अड्डा नहीं है; आप अभागे, घिसलने वाले कीड़े मकौड़े नहीं हैं; आप की आत्मा पद दलित और मलिन नहीं है;" वेदान्त की तरह अनुभव कीजिये कि आप सदा से शुद्ध पवित्र हैं; आप हमेशा से बे दाग हैं; आप सदा से सर्वत्र सम्पूर्ण हैं; अनुभव करो कि हम पवित्रों में परम पवित्र, प्रभुओं के परम प्रभु, परमेश्वर हैं। यही विचारो, यही समझो, यही अनुभव करो, ऐसा ही जीवन व्यतीत करो। जब सामने से हाथ लाकर आप नाक छू सकते हैं, तो मूँड़ के पीछे से हाथ घुमा कर नाक छूने की क्या जरूरत है? उपासनाओं वा प्रार्थनाओं द्वारा मुक्ति में विश्वास करने से कोई लाभ नहीं है।

वेदान्त कहता है कि यदि आप अपना यह विश्वास बना सकते हैं कि आप सदैव से मुक्त हैं, तो आप विश्वब्रह्माण्ड के उद्धारक हो जाते हैं। यदि आप यह निश्चय करें कि आप शरीर कभी नहीं थे, आप कभी दासत्व में बन्धे नहीं थे; यदि आप सयाने लड़कों की तरह हो जाँय और अबोध बच्चे न बने रहें; यदि वेदान्त के स्वर में स्वर मिलाकर आप विश्वास करें कि आप सदैव से मुक्त हैं; यदि आप वेदान्त की तरह अनुभव करें कि आप शक्ति हैं; तो आप अखिल जगत के तारक (मोक्ष दाता) होजाते हैं। अनावश्यक, निरर्थक, और अयुक्त रीतियों में आप अपनी शक्तियों का नाश मत करें। अपना उद्धार करने के लिए तकिया को पीटने की बचपन की रीतियों में अपनी शक्तियों का आप

अपव्यय न करें। अब बच्चे न बनें रहें। आप अपने को मुक्त समझिये, और आप मुक्त हैं। इस तरह सम्पूर्ण ईसाई धर्म में रक्षा-तत्व वेदान्त है। वेदान्त सूक्ष्मतर उपाय है। यदि इन सब रीतियों के पूरा हो चुकने पर आप में यह निश्चय दृढ़ हो जाय कि 'मेरा उद्धार होगया", दूसरा कोई विचार बाकी न रहे, तो याद रखिये कि आप की ईसाइयत में वेदान्त व्याप्त और फैला हुआ है, और वही आपकी रक्षा करता है। बाहरी नामों और रूपों तथा रीतियों को अनुचित महत्व न दो।

ईसाइयों की धार्मिक चढ़ाइयों (crusades) से, जिनमें बेहद खून बहा, जूडिया (यहूदियों का देश) में समर और संघर्ष फैला। एक मैदान में ईसाइयों ने मार और हार खाई। ईसाई सेना के एक धर्मोन्मत्त ने, जो नाम और कीर्ति का भूखा था, खबर उड़ा दी कि 'स्वप्न में मुझे एक देवदूत ने दर्शन देकर बताया है कि मेरे पैरों के नीचे एक ऐसा भाला छुपा हुआ है जो एक बार ईसा के पैरों में लग गया था, और यह भाला मिल जाने से ईसाइयों की जीत होगी।" लोगों ने यह खबर फैलाना शुरु की. और वह सारी सेना में फैल गई। बात कहां तक सच या झूठ है, इसका विचार किये बिना ही सब के सब लोग वहां भूमि खोदने लग गये, परन्तु भाला न निकला। प्रातःकाल से बहुत रात तक वे खोदते रहे फिर भी भाला न हाथ लगा। वे बहुत निराश हुए, और खोज बन्द करने ही वाले थे कि वही मनुष्य गला फाड़ २ कर चिल्लाने लगा कि "मुझे वह स्थान मिल गया, वह मुकाम मिल गया"। सब के सब उसके साथ उस स्थान पर गये, जहाँ उसने भाला निकलने को बताया था। वहां

उन्हें भाला मिला। भाला बहुत पुराना और जीर्ण था, चींटियों और कीड़ों-मकेड़ों ने उसे चुन लिया था। उस (धर्मोन्मत्त) ने कहा यह भाला है, इसको मट्टी ने खा लिया है, इसका अवश्य ईसा के चरणों से स्पर्श हुआ होगा।" और उसने भाले को ऐसी जगह पर ऊंचा कर दिया जहां पर हरेक व्यक्ति उसे देख सके। ईसाई खुशी से भाले के इर्द-गिर्द उछलने लगे, उनके हर्ष की हद न रही। मट्टी से भरे हुए भाले को पाने के आवेश में बल और उत्साह से परिपूर्ण होकर सब ने एक साथ फिर शत्रु पर धावा किया और विजयी हुए। बाद को जब ईसाई यूरोप को लौटे, तब सब में यही विश्वास जमा हुआ था कि भाले के ही प्रभाव से उन्हें जय, श्री प्राप्त हुई थी। परन्तु कुछ दिनों के बाद वही मनुष्य जिसने उक्त कहानी कही थी, बीमार हुआ. और मरणप्राय होगया। जो धर्माचार्य उसका कल्याण करने आया था उस से उसने कबूला कि भाले की कहानी जाली थी उसने कहा कि भाला वास्तव में मेरे परदादा का था. वह भी सैनिक था। परदादा के मरने के समय से भाला चीथड़ों में लपेटा हुआ घर में रक्खा था। केवल मेरे परदादा ने ही इस भाले का व्यवहार नहीं किया था, बल्कि उन्हें भी अपने पूर्व पुरुषों से यह प्राप्त हुआ था। जब ईसाई जरूसलेम को जा रहे थे, तब मैं इस भाले को जैसा का तैसा लपेटा हुआ अपने साथ लेता गया, किन्तु समर भूमि में वह बेकार जान पड़ा, और भागते समय मुझे यह ख्याल आया कि मैं सर्व प्रिय और साथ ही साथ नामी भी हो सकता हूँ। इस लिए मैंने कथा गढ़ी (रची) और जब लोग मुझ से दूसरी ओर खोद रहे थे तब मैंने खाही में भाले को फेंक दिया और जब लोगों ने आकर वहां

खोदा तो भाला उनके हाथ लग गया। ऐतिहासिकों ने भेदियों (छिपकर सुननेवालों) का काम किया और भेद को पाकर प्रकट कर दिया कि भाले की कोई महिमा नहीं थी, महिमा थी लोगों के पूर्ण विश्वास और उत्साह की। उन्हों ने बतलाया कि जीत का कारण सैनिकों की भीतरी शक्ति थी, न कि भाला। उन्हों ने कहा कि सैनिकों ने अपने भीतर आत्मिक शक्ति उत्पन्न की और लोगों के उसी सजीव विश्वास ने विजय दिलाई; भाले ने कुछ नहीं किया। इसी तरह वेदान्त कहता है, "ऐ ईसाइयों, मुसलमानों वैष्णवों, सम्पूर्ण संसार के विभिन्न २ धर्मावलम्बियों! यदि तुम यह समझते हो कि ईसा या बुद्ध या कृष्ण अथवा किसी अन्य महात्मा के नाम के कारण तुम्हारा उद्धार होजाता है, तो याद रक्खो कि ईसा में, या बुद्ध में, या कृष्ण में, या किसी दूसरे शरीर में कोई करामात नहीं है, असल करामात तुम्हारे अपने स्वरूप आत्मा) में है"। विश्वास (faith) और स्वीकृत मत (creed के भेद को समझो। भाले की कहानी लोगों का मत और जीती जागती शक्ति थी। उससे प्रकट हुआ आवेश लोगों का विश्वास कहा जा सकता है। यह सजीव विश्वास ही लोगों का उद्धार करता है, न कि मत वा पंथ।

वेदान्त कहता है, यदि यह सजीव विश्वास, यह सजीव शक्ति ही ईसाइयों की विजय का कारण थी तो उसे क्यों नहीं ले लेते, और उस सजीव विश्वास को अपने प्रिय आत्मा में, अपने सच्चे स्वरूप में क्यों नहीं प्रयुक्त करते? उस सजीव विश्वास को आत्मा में, भीतर के सच्चे स्वरूप में क्यों नहीं लगाते? सजीव या निर्जीव विश्वास को ईसा, बुद्ध, या कृष्ण अथवा दूसरों में क्यों लगाते हो?

इस को भीतर की आत्मा में, भीतर के ईश्वर में क्यों नहीं लगाते ? कितना सरल उपाय है ! सजीव विश्वास का कैसा स्वाभाविक प्रयोग है !!

यह प्रश्न राम से बहुत बारम्बार किया जाता है "यदि वेदान्त ऐसा है, यदि वेदान्त का सार यह है, और यदि वेदान्त का जन्म भारत में हुआ था, तो भारत इतना पददलित क्यों है ?" भारत की दुर्दशा का कारण यही है कि लोग वेदान्त को व्यवहार में नहीं लाते। अमेरिका-वासी भारत के लोगों से अधिक वेदान्त पर अमल करते हैं, और इसी से वे ऐश्वर्यवान् हैं। वेदान्त को भारत के पतन का कारण बतलाने का संसार को कोई हक नहीं है। एक सुन्दर कहानी सुनाकर राम इसे सिद्ध करेगा। भारत में एक ग्राम का एक लड़का बड़ा भारी विद्वान होगया। उसने विश्व-विद्यालय में पढ़ा था, और विश्वविद्यालय के नगर में रहने से उसमें कुछ यूरोपीय ढंग आ गये थे। आप जानते हैं भारत के लोग बड़े ही स्थिति पालक (conservative) होते हैं। और बहुत थोड़े दिनों से ही वहां यूरोपीय रीति-नीतिका प्रवेश हुआ है।

राम ऐसे बहुतेरे लोगों को जानता है जिन्हों ने अंग्रेजी विश्व विद्यालयों में अभ्यास तो किया है परन्तु वे अंग्रेजी पोशाक कभी नहीं पहनते, अंग्रेजी भाषा कभी नहीं बोलते। माता पिता ऐसी गुस्ताखी अपने सामने नहीं सह सकते। अस्तु, इस लड़के ने विश्व विद्यालय के नगर में एक घड़ी खरीदी। गर्मी की तीन महीनों की छुट्टी में वह अपनी दादी के यहां रहा। वहा उसे घड़ी की जरूरत जान पड़ी। वह घड़ी को अपनी दादी के यहाँ ले गया। दादी स्वभावतः घर में

इस अनाहूत प्रवेश (intrusion) के विरुद्ध थी। युवक कोई अंग्रेजी वस्त्र तो अपने साथ नहीं लाया, परन्तु उसने समझा कि अध्ययन के लिए घड़ी का होना अत्यावश्यक है। उसे अंग्रेजी कुर्सी या मेज़ लाने का साहस नहीं हुआ, क्योंकि ये चीज़े तो बड़ी भीषण समझी जाती थीं। परन्तु सब आपत्तियों के लिए तैयार होकर वह घड़ी ले आया। सारा परिवार इसके विरुद्ध था, दादी विशेष करके थी। वह इस अनधिकार प्रवेश (intrusion) को नहीं सह सकी। उस के लिये तो यह बड़ी ही भयानक बात थी। उसने कहा, "देखो, यह हर क्षण टिक टिक का अप्रिय शब्द किया करती है इसे तोड़ डालो, नष्ट करदो, बाहर फेंक दो, यह एक अपशकुन है. यह किसी भीषण चीज की सृष्टि करेगी, यह किसी भीषण दुर्घटना का कारण होगी।" दादी किसी तरह से भी नहीं मानी। नवयुवक ने समझाने की यथा शक्ति चेष्टा की, परन्तु वह राज़ी न हुई। दादी के रोष क्षोभ का ख्याल छोड़ कर लड़के ने घड़ी को अपने पढ़ने के कमरे में ही रक्खा। संयोग से घर में चोरी हो गई। कुछ गहना और नगदी चोरी गयी। दादी को अपने पक्ष पुष्ट करने के लिए एक और बात हाथ लगी। उसने चिल्ला कर कहा "क्या मैंने नहीं कहा था कि यह घड़ी आफत बरपा करेगी? चोर हमारा गहना और रुपया चुरा ले गये किन्तु घड़ी नहीं चुराई गई। वे जानते थे कि घड़ी ले जाने से हमारा सत्यानाश हो जायगा। अरे, इस आफत की पुतली (घड़ी) को म घर में क्यों रक्खे हुए हो?" लड़का बड़ा हठीला था। दादी की सारी हाय हाय व्यर्थ हुई। लड़के ने अपने पढ़ने के कमरे में घड़ी को रक्खा और कुछ ही दिनों बाद लड़के का बाप मर गया।

तब तो दादी बहुत ही विकल हुई। उसने हाहाकार किया, "ऐ हठी लड़के! इस अशकुन को घर से निकाल बाहर कर। अब एक क्षण भी इसे रखने की हिम्मत तुझे कैसे होती है?" लड़के ने इस पर भी घड़ी रहने दी। फिर थोड़े ही समय के बाद लड़के की माता भी मर गई। तब तो दादी किसी तरह भी घड़ी को घर में न रख सकी। अन्य बहुतेरे लोगों की तरह उसने समझा कि घड़ी में कोई कीड़ा है, क्योंकि कभी किसी वस्तु को यंत्र से चलते उन्हों ने नहीं देखा था; इस लिये उसने समझा कि घड़ी में कोई कीड़ा अवश्य है, और वही इसे चलाता है।

आप से आप घड़ी के टिक २ करने और चलने की बात उसके मन में बैठ ही नहीं सकी। कुटुम्ब के सब क्लेशों का कारण उसने घड़ी ही को समझा। इस लिए वह घड़ी अपने निजी कमरे में उठा ले गयी, और एक पत्थर पर उसे रख कर दूसरे पत्थर से चूर २ कर दिया। घड़ी से उसने अपना बदला चुका लिया। अब कृपा करके ध्यान दीजिये। आप भारतीय दादियों की दशा पर हँस भले ही लें, परन्तु दूसरी बातों में आप भी उन्हीं दादियों की तरह कर रहे हैं। लोग जिस तिस का सम्बन्ध जोड़ कर किसी नतीजे पर जा धमकते हैं, और कहते हैं कि अमुक वस्तु अमुक बात का कारण है। यूरप वासी विशेषतया पक्षपाती होते हैं, और इस नतीजे पर झट फाँद पड़ते हैं कि "वेदान्त ही भारत के पतन का कारण है"। इसी तरह इस संसार की दूसरी बातों में भी वे अपने तर्क-वितर्क के परिणामों पर फाँद पड़ते हैं।

अमेरिका और यूरोप के उत्थान का कारण ईसा की

व्यक्ति नहीं है। अज्ञात रूप से अमल में लाया हुआ वेदान्त ही यथार्थ कारण है। व्यवहार में वेदान्त का न होना ही भारत के अधोपतन का कारण है।

सम्पूर्ण जगत को उठाने में मातायें क्या भाग लेती हैं, इस विषय में राम कुछ इस स्थल पर कहेगा। संसार के सब महान नायक महान दादियों के बच्चे थे।

माताएँ ही सब संसार को उठा सकती हैं। माताएँ ही देश को उठा या गिरा सकती हैं। माताएँ ही प्रकृति के प्रवाह में ज्वार भाटा ला सकती हैं। श्रेष्ठ माताओं के पुत्र सदा ही महान नायक हुआ करते हैं। यदि बाल्य काल में ही बच्चे में ये सच्चाइयें भर दी जायं, यदि बचपन में ही बच्चे को सच्चे स्वरूप की प्राप्ति का पाठ पढ़ा दिया जाय, तो वह बड़ा होने पर कृष्ण या ईसा बन सकता है।

माताएं अपने बच्चों की प्रकृति को विगाड़ सकती हैं या उत्तम व उच्च कर सकती हैं। यह माताओं का कार्य्य है। तुमने स्पार्टा की उस माता की कथा सुनी है जिसने रण क्षेत्र को जाते हुए अपने पुत्र से कहा थाः—"ऐ बेटा! या तो तलवार को लिए हुए आना या तलवार पर आना; बिना तलवार के न आना। अर्थात् मेरे पास या तो जिन्दा आना, या मुर्दा; परन्तु पराजित होकर मत आना"।

भारत वर्ष में एक रानी थी। जब उसका पति हार कर रण से भाग आया, तो उसने नगर के फाटक बन्द करवा लिए, और अपने पति को नगर में न घुसने दिया। उसने पति से कहला भेजा, "ऐ विश्वास घाती! दूर हो, तू मेरा पति नहीं है, तूने रण में पीठ दिखाई है; मैं अब तुझे नहीं ग्रहण

करूंगी; दूर हो, तू मेरा पति नहीं है"।

एक भारतीय रानी की कथा सुनाता हूं जिसने अपने सब बच्चों को पूर्ण बनाने की प्रतिज्ञा की थी। उसने अपने सब बच्चों को आवागमन से छुटा देने का संकल्प किया था। अपने बच्चों को आवागमन से मुक्त कर देने का भारतीय माताओं का एक मात्र लक्ष्य और उद्देश्य होता है। ज्ञानवान मुक्त होता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता। उस माता ने अपने समस्त राज्य को भी आत्मानुभावियों और ईश्वर-भक्तों से परिपूर्ण करा देने की शपथ ली।

उसने अपने सब प्रजा जनों को भी नर नारायण बनाना चाहा। यह एक माता का एक संकल्प था, और उसे सफलता हुई। उसके पुत्र नर-तन धारी नारायण हुए। वे कृष्ण हुए, बुद्ध हुए, तत्वज्ञानी हुए, त्यागी हुए, और सम्पूर्ण समाज पर शासक हुए थे। उसकी सारी प्रजा बन्धन मुक्त हो गयी। एक नारी ने यह कर दिखाया। किस तरह ? जब उसके बच्चे बिल्कुल छोटे थे तब ही से वह उन्हें लोरी गा गा कर सुनाया करती थी। जब वह उन्हें दूध पिलाती थी, तब लोरी गा कर सुनाया करती थी; वह अपने दूध के साथ ब्रह्मज्ञान उनमें भरा करती थी। पालने को झुलाते समय जब वह उन्हें सुलाने के गीत गाया करती थी, तब वह वेदान्त का दूध उनमें पेवस्त किया करती थी।

शुद्धोऽसि, बुद्धोऽसि, निरञ्जनोऽसि।
संसार–माया परिवर्जितोऽसि ॥
संसार-स्वप्नः त्यज मोह निद्रा।
मंदालसा वाक्यमु वाचपुत्रः ॥

ॐ

(१)

(इस श्लोक के अभिप्राय को अंग्रेजी में कविता राम से बही थी जिसका हिन्दी अनुवाद नीचे दिया जाता है)

सो जा बच्चे ! सो जा, सो जा मुन्ना ! सो जा ।
सो जा लल्ला ! सो जा, सो जा सो जा सो जा ॥

सिसक चीख मत, रो न कभी तू, कर अविघ्न आराम सदा तू ।
दूर फेंक सब भय-बाधाएँ, गुण गंधर्व सभी तब गाएँ ॥
सुंदरताईं संपतियों का. तथा नियामक ऋद्धि-सिद्धि का ।
है निर्दोष आत्मा तेरा, शासक उन्नायक सु-बडेरा ॥

सो जा बच्चे ! सो जा, सो जा मुन्ना ! सो जा ।

(२)

मृदु गुलाब, सित मधुर ओस-कण, महक, मधु, सुखद ताप, मृदु पवन ।
मधुरालाप अति प्रिय तानें, कान नयन अच्छा जो जानें ॥
सो तेरे स्वर्गीय भवन से, आता है कल्याण-भवन से ।
शुद्ध, शुद्ध तू निर्विकार है, निष्कलंक तू ओंकार है ॥

सो जा बच्चे ! सो जा, सो जा लल्ला ! सो जा ।

(३)

शत्रु, भीति, शंका नहिं कोई, अमर ! न छू सकता है कोई ।
मीठी, प्रिय, मृदु, शांत, अति कालित, निद्रा से आत्मा परिपूरित ॥
तू ही तारामय अंबर को, जटित तथा कमनीय शिखर को ।
उठा रहा शिर पर ऐ प्यारे ! ओंकार के रूप दुलारे !

सो जा बच्चे ! सो जा, सो जा लल्ला ! सो जा ।

(४)

सूर्य चन्द्र गेंदें क्रीडा की, घर महराबें इन्द्र धनुष की ।
राहें तव पय-सरिस उजेरी, मेघ करें मिल बातें तेरी ॥
गुडियाँ तेरी सकल दिशाएँ, सदा घूमती नाचें गाएँ ।
वे तेरी स्तुति करती हैं, ओं ओं सत्सत करती हैं ॥

सो जा बच्चे ! सो जा, सो जा लल्ला ! सो जा ।

(५)

कुमुद कमल में झील सरो मधि, दे ऐ मधुर क्या तव शायित छवि।
देश-काल की गरम कंबलें, सुप्त बाहु से तव मुख खोलें॥
करवट में दिखलाई दे तू, बच्चे जैसा सोता है तू।
हंसते हुए नेत्रों वाले! प्यारे सुत नटखट ममवाले!

सो जा बच्चे! सो जा, सो जा ललला! सो जा।

(६)

ऊंची कडी कूक कोयल की, तेरी प्रिय गुड गुड गुड सीटी।
तारे पवन विहंग पिदुकियाँ, हैं सु-खिलौने बाल-गाडियाँ॥
यह अपार संसार-प्रसारा, है कौतुकमय स्वप्न तिहारा।
यह सब तेरे भीतर ही है, यद्यपि दिखता बाहर ही है॥

सो जा बच्चे! सो जा, सो जा लल्ला! सो जा।

(७)

ऐ जाग्रत्-घर निद्रा सुख के, सक्रिय स्रोत गंभीर बुद्धि के!
जीवन और कर्म के कैसे, शांति-भरे चश्मे के ऐसे!
विषम विरोध और संघर्षण, के ऐ प्यारे सुंदर कारण!
सीमाकारी अंधकार के, अंतिम नमस्कार तू कर ले।

सो जा मुन्ना! सो जा, सो जा लल्ला! सो जा।

(८)

सुंदर मनहर चीजें सारी, उडते हुए परों की न्यारी।
हैं खुशामदी ध्वनियाँ जारी, हे आनंद-स्वरूप गरुड जी!
तव पंखों की चलती छाया, मोह-युक्त सुंदरता-माया।
आधी कभी प्रकट करती है, अर्द्ध छिपाती घूँघट इव है॥
इस घूँघट के ओढन वाले! मधुर ॐ अति आनँद वाले!
तू सच्चा-स्वरूप है ॐ, ॐ ॐ तत्सत् तू ॐ॥

सो जा भैया! सो जा सो जा बेबी! सो जा।
सो जा लल्ला! सो जा सो जा, सो जा, सो जा॥

वह रानी अपने सातों लड़कों को जिस तरह की लोरियां सुनाती थी उनका यह एक नमूना है। जब लड़कों

ने घर छोड़ा, तब वे ईश्वर भाव से परिपूर्ण हुए विचरने लगे। उनके द्वारा वेदान्त का प्रसार हुआ। आठवें लड़के की शिक्षा ठीक ऐसी नहीं हुई थी, क्योंकि पिता नहीं चाहता था कि वह राज-पाट छोड़ कर चला जाय। उसे पूर्ण स्वतंत्र मनुष्य बनाने की आवश्यकता नहीं थी। इस लिए माता ने इस लड़के को ऊपर की लोरी नहीं गा कर सुनाई। परन्तु किसी न किसी तरह उसे अपने इस प्रतिज्ञा की रक्षा करनी थी कि "लड़के को इस जीवन में किसी तरह का दुःख पीड़ा भोगनी न पड़े"। चूंकि आठवें लड़के से राज पाट छुटाना मंजूर नहीं था, इस लिए इसकी शिक्षा अन्य सातों की सी नहीं हुई थी। आठवां लड़का एक धाय को सौंप दिया गया। किन्तु जब माता मरने लगी, तब यह लड़का उसके पास लाया गया, और माता ने उक्त ज्ञान (गीत वा लोरी) लड़के को दे दिया। गीत कागज़ पर लिखा था और किसी ऐसी बहुमूल्य वस्तु में लपेटा हुआ था कि जिस पर रत्न लगे हुए थे। माता ने इसको लड़के की भुजा में बांध दिया, और इस तावीज को बहुत ही पवित्र रखने को कह दिया। माता ने लड़के से कहा, "इसके भीतर के कागज को पढ़ना, उस पर विचार करना, मनन करना, और वह तुम्हें स्वतंत्र बना देगा, तुम्हारे सब दुख हर लेगा"। उसने लड़के से कहा कि "घोर संकट पड़े बिना इस तावीज को न खोलना"। माता और पिता दोनों मर गए। लड़का राजा हुआ, और बहुत दिनों तक राज्य करता रहा।

एक दिन लड़के के बड़े भाई अपने पिता की राजधानी में आये। उन्हों ने अपने छोटे भाई से, जिसका नाम अलर्क था, कहला भेजा कि "सिंहासन खाली कर दो, क्योंकि बड़े

भाई होने के कारण सिंहासन के हम न्यायसंगत उत्तराधिकारी हैं, और सब से बड़े भाई के लिये तुम्हें राजगद्दी छोड़ देना चाहिए"। जब अलर्क को बड़े भाई ने यह धमकी दी, जब सब से बड़े भाई के उत्तराधिकारी होने की धमकी उसे मिली, तब वह भय से काँपने लगा। वह डर गया और उसे कोई उपाय न सूझा। अपना सब गौरव और वैभव छिन जाने की आशंका से वह रोने लगा। रात को सोने के समय उसका ध्यान अपनी बाँह के यंत्र (तावीज़) पर गया और माता के अन्तिम शब्द उसके मन में बिजली की तरह कौंध गये। उसने यंत्र को खोला और कागज को पढ़ा। अश्रुपूर्ण नेत्रों से उसने पढ़ा, "तू शुद्ध स्वरूप है, तू निर्विकार है, तू सम्पूर्ण ज्ञान है, सम्पूर्ण शक्ति है, तू सम्पूर्ण शक्ति का नियामक है, तू संसार में सम्पूर्ण सौन्दर्य और आनन्द का दाता और प्रतिपालक है। अपने को शरीर मत समझ, सांसारिक पदार्थों पर भरोसा मत कर, उनसे ऊपर हो। इस पर मनन कर, इस पर विचार कर, शत्रु और मित्र तू ही है।" पुत्र ने इस उपदेश का पूरा २ अनुभव किया; उसकी चिन्ता और भय जाता रहा; हर्ष और आनन्द की उसे प्राप्ति हुई। उसने वार २ इसे गाया। गीत के अर्थ और गुण तथा माता की सदेच्छाओं के कारण वह पुनर्संजीवित हुआ और अपने आप में आया। सब भय और चिन्ता भाग गई, शोक सब जाता रहा; सब सांसारिक आशाओं, लौकिक इच्छाओं और तुच्छ कामनाओं को उसने अन्तिम नमस्कार कर लिया। उसे इसका ऐसा पूर्णानुभव होगया, पवित्रता और बल से वह इतना परिपूर्ण होगया कि वे (पवित्रता और बल) उससे उमड़े पड़ते थे। वह सोना भूल गया और कपड़े पहन कर

जिस स्थान पर उसके भाई थे वहाँ पहुँचा। उनसे उसने कहा, "आइये, आइये, और मेरा यह भार उतार दीजिये; शिर की पीड़ा का कारण यह राजमुकुट, यह भार, आप ले लीजिये; मुझे इससे मुक्त कर दीजिये। मैं जानता हूं कि जो राज-सिंहासन पर बैठने और राज्य पर शासन करने के अभिलाषी हैं, वे सब शरीर मैं ही हूं। मैं तुम हूँ, और तुम और हम एक ही हैं, इसमें कोई भेद नहीं है"। भाईयों ने जब उसके मुखमण्डल पर इस पवित्रता को देखा, तो वे प्रसन्नता से खिल उठे। उन्होंनेः कहा, "हम सिंहासन लेने नहीं आये थे क्योंकि हम तो सम्पर्ण संसार के शासक हैं, हम तो केवल तेरा वह सच्चा जन्माधिकार तुझे देने आये थे, जो इस शरीर के भीतर है।" उन्हों ने कहा, 'भाई! तू इन्द्रियों का दास नहीं है; भाई! तू केवल इस लोक का ही राजा नहीं है बल्कि तू तो सूर्य, नक्षत्र मण्डल, अखिल विश्व, और समस्त लोकों का राजा तथा स्वामी है। भैया! आ, अनुभव कर कि तू अनन्त है, निर्विकार स्वरूप है, सूर्यों का सूर्य, और प्रकाशों का प्रकाश है।" राजा ने इस सत्य का अनुभव किया और राज्य करता रहा। परन्तु अब राज-काज को वह नाट्यशाला में नाटक का अभिनय मात्र समझता था। वह अपने को अभिनेता मात्र समझता था। अस्तु, राजा स्वस्थ हो गया, और किसी बात से भी उसे शोक नहीं होता था। उसने शक्तिशाली राजा की तरह राज्य किया, और जगत में अत्यन्त प्रबल राजा हुआ। सफलता उसे ढूँढ़ा करती थी।

नित्यानन्द, निरन्तर शान्ति तुम्हारी है। नहीं, नहीं, तुम ही वह हो, अपने केन्द्र को प्राप्त करो और सदा सर्वदा वहीं टिके रहो। ॐ! ॐ!! ॐ!!!

लोगों को वेदान्त क्यों नहीं भाता ?

उर्दू भाषा में स्वामी जी की लेखनी से निकले हुए लेख, जो सन् १९०० में रिसाला आलिफ नामी मासिक पत्र के भिन्न २ अंकों में प्रकाशित हुए थे, उनका हिन्दी अनुवाद यहां से आरम्भ होता है।

जब कोई नया ख़याल मनुष्य सोचता है तो मस्तिष्क के भीतर एक लकीर-सी पड़ जाती है। बालक जब नई-नई संगति में से गुज़रता है या नई नई पुस्तकों को पढ़ता है, तो उसके मस्तिष्क के भीतर नई-नई लकीरें बन जाती हैं, और आगे चलकर फोनोग्राफ की भाँति ख़याल की चढ़ाई उन लकीरों (धारियों) पर सरल हो जाती है। अर्थात् जो विचार एक बार हृदयंगम हो चुके हों, उनको दुबारा स्मरण करना कराना या समझना समझाना सहल हो जाता है, और उन विचारों के संबंध में कहीं चर्चा हो रही हो तो वह तत्काल समझ में आ जाती है। किन्तु यदि कहीं इस प्रकार के विचारों का सिलसिला सामने आ जाय कि उनमें और मस्तिष्क की वर्तमान लकीरों (धारियों) में कोई समानता न हो, तो कुछ पल्ले नहीं पड़ता, बुद्धि चकरा जाती है, गड़बड़ मालूम देती है। कथा कहानियों में प्रायः उन बातों की चर्चा होती है जिनके अनुसार नित्य प्रति के अनुभव ने मस्तिष्क में पहले ही से (धारियें) बना रक्खी हैं; इसलिये साधारण उपन्यास नाटक को पढ़ते समय मस्तिष्क में उन प्रस्तुत लकीरों (पटरियों) पर मनुष्य की समझ रेलगाड़ी की भाँति दौड़ जाती है। परन्तु दर्शन या गणित शास्त्र का

अध्ययन करते समय मस्तिष्क में नई लकीरें तैयार करनी पड़ती हैं; इस कारण इन विद्याओं के प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती है। वेदान्त के कठिन समझे जाने का भी कारण प्रायः यही है।

मैत्रायण ब्राह्मण उपनिषद् में आया है। कि कठिनता के जाल में फँस जाने का कारण निश्चय पूर्वक यही है कि जो स्वर्ग अर्थात् पवित्रता में रहने योग्य हैं वे उनकी संगति ग्रहण करते है कि जो उस स्वर्ग अर्थात् भीतरी पवित्रता के योग्य नहीं। आज कल के प्रायः सभी युवक बाल्यावस्था से ही ऐसी संगति में अपना समय बिताते हैं, ऐसी किताबों को पढ़ते हैं, और इस प्रकार की शिक्षा पाते हैं कि संसार का अल्पकालिक जीवन उनके मस्तिष्क में घर कर बैठता है। वास्तविक रहस्य की ध्वनियाँ निकालनेवाली कोई तार उनके मस्तिष्क रूपी तंबूरे में लगने ही नहीं पाती, तो अवसर पर बजे क्योंकर? जब कहीं व्याख्यान आदि में वे अपने रुचि की बात सुन पाते हैं, तो उसके उत्तर में उनके हृदय की कोई तार हिल जाती है, इसलिये झट तालियाँ बजाते हैं। पर जहाँ परमार्थ का उपदेश सुनाया, आत्म-ज्ञान की कोई बात पढ़ी, ऊँघने लगे, जमुहाई लेने लगे, तबियत घबरा गई, बोल उठे—"मन नहीं लगता, कुछ मज़ेदार (interesting) नहीं हैं, जी उकता गया"; यह नहीं तो कोई और हुज्जत पेश कर दी। गणित, दर्शन, विज्ञान-शास्त्र यद्यपि कठिन हैं, पर हमारे नवयुवक इन कठिनाइयों को विश्वविद्यालय की परीक्षा के भय से उत्तीर्ण कर जाते हैं। और माना कि ब्रह्मविद्या (वेदांत) भी गूढ़ है, पर मृत्यु की परीक्षा पास करने के लिये इसी की आवश्यकता है।

किंतु आश्चर्य का स्थान है कि प्रायः सभी नवयुवक अंतिम परीक्षा (final examination अर्थात् मृत्यु) को ऐसा भूल बैठे हैं कि उसके लिये इस विषय की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते।

प्रायः सभी बच्चों में एक खूबी की बात यह होती है कि मस्तिष्क में नई लकीरें प्राप्त करने को सदैव तत्पर रहते हैं—अर्थात् शिक्षा शील (docile) होते हैं, नई नई बातों के जानने (information) के भूखे और प्यासे होते हैं। ज्ञान के लिये बच्चों की सी आस्था (भूख) कुछ नवयुवकों और वृद्धों के भीतर भी पाई जाती है, किंतु आजकल भारतवर्ष में बहुत विरल। प्रायः नवयुवकों में यह दोष हो जाता है कि ज्ञान-भंडार उपलब्ध करने के लिये सुस्त हो जाते हैं, दिमाग़ की जागृति खो बैठते हैं, जड़ (inert) बन जाते हैं; क्या पड़ी है कि अपने सांसारिक विचारों की लकीरें, जो मस्तिष्क में बन चुकी हैं, मिटाकर आध्यात्मिक विचारों का रंग जमाएँ।

किसी व्यक्ति की सम्मति | एक गाड़ी को सैकड़ों कठिनाइयों से खींच खांचकर किसी पहाड़ी सड़क पर चढ़ाओ और पहाड़ की चोटी तक ले जाकर छोड़ दो, तो किस वेग से गाड़ी स्वयं नीचे गिरती-गिरती लौट आएगी! यही दशा प्रायः आज कल के विद्यार्थियों की है। विद्या की गाड़ी को खींचते-खींचते शिक्षा प्रणाली की चोटी [एम्० ए० बी० ए०) तक पहुँचाते हैं, और वहां पहुँचते ही छोड़ देते हैं, अर्थात् पुस्तकावलोकन को नमस्कार कर लेते हैं, अनुसंधान और विवेचना को बिलकुल त्याग देते हैं, और थोड़े ही साल में सिवाय अपने दफ्तर की

प्रचलित विद्या के बाक़ी सब पढ़ा-लिखा हृदय के तख्ते से साफ़ धो डालते हैं। यद्यपि यह सम्मति बिलकुल दुरुस्त तो नहीं, किंतु इसमें भी संदेह नहीं कि चाहे सामाजिक संबंधों के कारण हो, चाहे निकम्मी घरेलू चिंताओं के कारण, कालेज छोड़ते ही शिक्षित पुरुषों की विद्या और आत्मा की उन्नति प्रायः रुक जाती है। जब यही दशा है तो वेदांत को कौन पढ़ेगा ?

वेदांत के कठिन होने का बड़ा भारी कारण यह है कि प्रत्येक मनुष्य में यह योग्यता नहीं होती कि उस पर तत्त्व वस्तु का रहस्य खुल सके। जैसे डेढ़ वर्ष का बच्चा मेघदूत का अर्थ समझने के अयोग्य होता है; हाँ, कुछ शिक्षा पाकर कालिदास के सब नाटकों का अर्थ अपने आप लगा सकता है। वैसे ही वेदांत का भेद जानने के लिये संसारी मनुष्य को शिक्षा की आवश्यकता है, अंतःकरण की शुद्धि की आवश्यकता है। हृदय दर्पण की छांई उतर जाने पर ज्ञान की ज्योति अपने आपही प्रकाशित हो जायगी।

आंतरिक शुद्धि।

वेदांत किसी संप्रदाय या मत का नाम नहीं है कि दूसरे मत के लोग उस पर आक्षेप करें तो ठीक हो। यह तो उस आत्मा (तत्त्व वस्तु) का ज्ञान (the Seience of the Soul) है जो सब का स्वरूप है। यह ब्रह्मविद्या तो गणित की भाँति वह ज्ञान है जिस में संशय का नाम निशान नहीं। अंकगणित से वही विद्यार्थी नाक भौं चढ़ाए रहते हैं जिनकी अपनी बुद्धि दुरुस्त नहीं, या जिन में थिरता नहीं होती। वेदांत से भी वही महाशय अप्रसन्न रहते हैं जिन्होंने उचित

रीति से कभी उसकी प्राप्ति नहीं की। ज्ञान की प्राप्ति दो रीति से हो सकती है—(१) पुस्तकीय ज्ञान (theoratical knowledge) (२) व्यावहारिक ज्ञान (practical or experimental knowledge)। रसायन शास्त्र का पढ़नेवाला साथ ही साथ प्रयोग भी न करता जाय, तो कभी उस विद्या से लाभ नहीं उठा सकता। वैसेही आत्म विद्या का जिज्ञासु जभी आनंद उठा सकता है जब विद्या के साथ साथ उसका प्रयोग (व्यवहार) भी होता जाय। गणित शास्त्र में किसी रीति को केवल कंठस्थ कर लेना ही काफी नहीं होता। जव तक उस रीति से संबंध रखने वाले अभ्यास के प्रश्न हल न किये जांयगे, उसमें प्रवेश न होगा। जब तक गणित की रीतियाँ जिह्वा पर हैं, सफलता नहीं होती। सफलता के लिये तो रीतियों का नखों में उतर आना आवश्यक है, अर्थात् रीतियों पर इतना अधिकार अपेक्षित है कि मानो अपने आप अँगुलियाँ उन रीतियों के अनुसार प्रश्न हल करती चली जाँय। यही हाल वेदांत का है। इस विद्या का आनंद तभी है जब ब्रह्म-अभ्यास इस कोटि का हो कि शम, दम, विवेक, वैराग्य आदि अपने आप रोम-रोम में झलकने लगें, चितवन से शांति और आनंद बरसने लगे, वाणी से आनंद टपकने लगे। कोई व्यक्ति यदि रेखागणित की ४७ वीं शकल का सबूत पढ़ा चाहे तो उसे उचित है कि पहले ४६ शकलों को समझकर आए; यदि वह उन शकलों को नहीं जानता, तो ४७ वीं शकल भी उसकी समझ में नहीं आवेगी। अगर कोई बालक हिसाब में महत्तम समापवर्तक (G. C. M.) की रीति सीखना चाहता है, किंतु गुणा और भाग नहीं जानता, तो उसे महत्तम समापवर्तक कभी नहीं आवेगा। ठीक

इसी रीति पर यदि सत्य का जिज्ञासु वेदांत के नीचे-लिखे आरंभिक पाठों को व्यावहारिक रूप से याद न कर लेगा, तो वह चाहे जितने ग्रंथों को पढ़ा करे आत्मिक आनंद से वंचित ही रहेगा।

व्यावहारिक ज्ञान।

बाल्यावस्था में जब पांडव और कौरव एक साथ पढ़ते थे। एक दिन उन सब की परीक्षा ली गई। किसी विद्यार्थी ने तो आधी किताब सुनाई, किसी ने पूरी किताब, किसी ने दो किताबों में परीक्षा दी, किसी ने चार में, किन्तु युधिष्ठिर से जब पूछा गया कि तुमने क्या कुछ याद किया है, तो उसने बालोपदेश के अक्षर-परिचय के अतिरिक्त केवल दो वाक्यों की ओर संकेत किया कि "केवल ये दो वाक्य मैंने याद किये हैं"। यह सुनकर परीक्षक महाशय को अत्यंत क्रोध हो आया और बोले "अरे दुष्ट! तू सब से तो बड़ा है और अभी तक याद केवल दो ही वाक्य किये हैं, यह कैसी सुस्ती है? तुझे लज्जा नहीं आती? चुल्लू भर पानी में डूब मर," इत्यादि। परीक्षक महाशयने इतने ही पर बस न की, दे चपत पर चपत लगे मारने। बेचारे युवराज राजकुमार के कपोल मारे थप्पड़ों के लाल हो गए, पर वाह रे राजकुमार! उफ़ तक नहीं की शाँत खड़ा रहा। यह दशा देखकर परीक्षक महाशय को अत्यंत विस्मय हुआ; जी में आया कि आज दुर्योधन को किसी अपराध पर धमकाना चाहा था तो वह पगड़ी उतारने को तैयार हो गया था। भगवान्! यह कैसा राज-कुमार है कि इसे कोसते कोसते वा पीटते २ अधमरा कर दिया और इसने चूँ तक नहीं की, प्रसन्न बदन खड़ा है।

अब युधिष्ठिर का हाल सुनिए। अक्षर-परिचय होने

के बाद पहला ही वाक्य जो गुरूजी ने प्राईमर (बालोपदेश) में बतलाया, यह था कि "क्रोध मत करो"। सुशील बालक ने गुरुजी की जिह्वा से यह वाक्य सुना और अलग हुआ। एकांत में जाकर गुरुजी के उपदेश को याद करने लगा, उस पर विचार करने लगा। कानों से सुने हुए पाठ को रोम-रोम में उतारने लगा, अपने व्यावहारिक जीवन में लाने लगा। विचारे भोले-भाले युधिष्ठिर को उस शिक्षा-कला की ख़बर तक न थी, जिसकी बदौलत साधारण बाबू और पंडित लोग विद्या रूपी गंगा की नहर अपने मस्तिष्क पर इस सफ़ाई के साथ बहा देते हैं कि रुड़कीवाली नहर की भांति एक बूंद भी पुल से नीचे गिरने नहीं पाती। ऊपर-ऊपर तो गंगा बहती हैं और निचला हिस्सा सूखा का सूखा पड़ा रहता है। देखने में तो सैकड़ों पुस्तकें पढ़ डालीं, परीक्षाओं में पूरे-पूरे अंक प्राप्त किए, विश्व-विद्यालय से पारितोषिक और पदक प्राप्त किए किंतु भीतर एक बूँद भी न पड़ने दी, आचरण में कुछ न प्रवेश होने दिया। बेचारा युधिष्ठिर इस कला से बिलकुल अपरिचित था। उसने जो कुछ पढ़ा, झट उसके हृदय में उतरने लगा। उसके विचार-क्रम का रूप यह थाः—

"क्रोध मत करो" भला क्योंकर ? हमें तो क्रोध आजाता है। फिर आता क्यों है ? क्या उचित है या अनुचित ? क्रोध के बिना काम चल सकेगा या नहीं ? यदि क्रोध न किया तो नौकर लोग ढीठ हो जाँयगे, काम अच्छा न करेंगे, रोब (प्रभाव) उठ जायगा, प्रबंध बिगड़ जायगा; रसोई समय पर न तैयार होगी, इत्यादि। क्रोध को छोड़ने में कठिनाइयें तो होंगी, पर क्या क्रोध को छोड़ना असंभव

है ? यदि असंभव होता, तो गुरुजी ऐसा उपदेश ही क्यों करते ? सच्छास्त्र ऐसा अनुशासन ही क्यों देते ? अब क्या करें, क्रोध तो आ ही जाता है। क्या यह उचित न होगा कि यों तो मान लिया जाय कि क्रोध करना अनुचित है, पर समय पर क्रोध आ जाय तो आ जाने दें ? नहीं यह तो छल है, गुरु और शास्त्र के साथ धोकेबाज़ी है। मुँह से हाँ करलेना और अमल में न लाना।—अब से दृढ़ संकल्प करते हैं "कि क्रोध को पास फटकने न देंगे"। क्रोध क्यों उत्पन्न होता है ? प्रायः जब कोई काम बिगड़ता है, या कोई वस्तु ख़राब हो जाती है, तो क्रोध आता है। अरे मन, काम तो एक बार बिगड़ चुका, तू उस पर चित्त को क्यों बिगाड़ता है ? वस्तु तो ख़राब होगई, बला से, रुपया-दो रुपया या सौ रुपया की होगी, तिस पर चित्त-जैसी अनमोल वस्तु को क्यों ख़राब कर बैठता है ? आनंद मेरा जन्मजात स्वत्व है। यदि कोई सांसारिक वस्तु खोई जाय, तो उसपर मैं अपने जन्मजात स्वत्व को व्यर्थ में क्यों नष्ट कर दूँ ? एक बार दुर्योधन ने अपने पिता से तलवार माँगी थी। पिता ने अस्वीकार किया था, तो दुर्योधन झट बिगड़ कर बोल उठा था –' मैं तुम्हारे घर में रहने का ही नहीं, तुम्हारा बेटा ही नहीं बनता, कहीं चला जाऊंगा, विष पान करलूंगा। इत्यादि "। अब तलवार अधिक से अधिक कहीं दस बीस रुपए की होगी। खो दी तो खो ही दी सही। तलवार को खोकर अपने जन्मजात स्वत्व (साम्राज्य-राजगद्दी) को भी खो देने पर तत्पर हो जाना कैसी व्यर्थ क्रिया है। ठीक इसी भाँति सतोगुण मेरा जन्म-जात स्वत्व है। दुर्योधन का अनुकरण मैं कभी नहीं करूंगा। किसी तरह की हानि हो जाने पर भी मैं अपने जन्मजात

स्वत्व (शांति) का कभी त्याग नहीं करूंगा। राजकुमारों के यहाँ रिवाज तो अवश्य यही है कि बात-बात पर बिगड़ जाना, उरद के आटे की तरह ऐंठना; किंतु गुरुजी का उपदेश है "शांत रहो, मन को हिलने ही न दो।" अब किस को आचरण में लाऊं? गुरुजी तो एक ही हैं, किंतु उनके विरुद्ध बर्ताव से शिक्षा देने वाले असंख्य हैं। किसकी मानूं ? उचित तो यही है कि गुरुजी का आज्ञा-वर्ती बनूँ। मैं चलन-व्यवहार की तानिक परवा न करूंगा। जो कुछ मुझे गुरुजी के द्वारा सत्य मालूम होगा, उसीपर चलूंगा, चाहे सारा संसार विरुद्ध हो। मैं संसार को अपना गुरु नहीं बनाऊंगा। सत्यता को अपना साथी रक्खूंगा।

वेदांत का एक साधन (प्रसन्नता)

परित्यजेयं त्रैलोक्यं राज्यं देवेषु वा पुनः।
यद्वाऽप्यधिकमेताभ्या न तु सत्यं कथंचन॥
त्यजेच्च पृथिवीं गंधमापश्चरण मात्मनः।
ज्योतिस्तथा त्यजेद्रूपं वायुः स्पर्शगुणं त्यजेत्॥
प्रभांसमुत्सृजेदर्को धूमकेतुस्तथोष्मतां।
त्यजेच्छब्दं तथाकाशं सोमः शीतांशुतां त्यजेत्॥
विक्रमं बृत्रहा जह्यात् धर्मं जह्याच्च धर्मराट।
न त्वहं सत्यमुत्स्रष्टुं व्यवसेयं कथंचन॥

अर्थ—"तीनों लोकों का त्याग करना, स्वर्ग का राज्य छोड़ देना, वरन् उससे भी यदि कुछ बढ़कर हो तो उसे न लेना स्वीकार है, किंतु सच्चाई से अलग होना स्वीकार नहीं कर सकूंगा।"

"चाहे पृथ्वी अपना गुण वा धर्म (गंध) छोड़ दे, जल अपना गुण (रस) छोड़ दे, तेज अपना गुण (रूप) छोड़

दे, वायु अपना स्पर्श-गुण छोड़ दे, सूर्य अपना प्रकाश छोड़ दे, अग्नि अपनी उष्णता छोड़ दे, आकाश अपने धर्म (शब्द) को छोड़ दे, चंद्र अपनी शीतलता को छोड़ दे, वृत्र का हंता (इंद्र) अपने वैभव को त्याग दे, धर्मराज (यमराज) धर्म (न्याय) को छोड़ दें, किंतु मैं सत्यता को कदापि नहीं छोड़ूंगा।"

ये वचन भीष्म पितामह जी के हैं। भीष्म पितामह इन पर चलते हैं। मैं भी इन्हीं को अपना आदर्श (motto) बनाऊँगा। जो एक बेर मेरी समझ में आ जाय कि यह सत्य है, उस पर अवश्य चलूँगा, चाहे सारी सृष्टि विरुद्ध हो। अब एक बेर जान लिया है कि क्रोध नहीं करना चाहिए, बस अंतिम निर्णय होगया। कुछ भी हो, क्रोधासक्त (मगलूबुल ग़ज़ब) नहीं बनूंगा।

महात्माओं के मुख से प्रायः यह भी सुना गया है कि "जो कुछ होता है, भले ही के लिये होता है," क्या यह सच है? मेरा तुच्छ अनुभव इस बारे में अभी सम्मति देने के योग्य नहीं, लेकिन उनकी बात पर क्यों विश्वास न करूँ? सब भले ही के लिये होता है। प्रकृति ने सेवा करने पर कमर बाँधी है। देवताओं ने शपथ खा ली है कि सदैव मेरी भलाई के लिये यत्न शील रहेंगे। यदि यह दशा है तो किसी बात के संबंध में मेरा कुढ़ना और ग़म खाना ऐसा ना समझी का काम है जैसा एक अनजान बच्चे का पुलिस के सिपाही को देखकर डरना। पुलिस का सिपाही तो नगर के लोगों की रक्षा और सेवा करने की ड्यूटी पर फिर रहा है, चोरों बदमाशों को हटाने पर कटि-बद्ध है, इससे भय काहे का? संसार के दुःख भी और

सुख भी मुझे उन्नति की निसैनी पर चढ़ाते हैं. मैं घबराऊँ किस लिये ? जिसको मैं बुरा समझता हूँ, वह भला ही है, तो क्रोध किस बात का ?

सर-निविश्ते-मा बदस्ते-खुद-निविश्त ।
खुश निवीसऽस्तो न-ख्वाहद बद निविश्त ॥

अर्थात् -हमारी निविश्त भाग्य) उस (ईश्वर) ने अपने हाथ से लिखी है; वह खुश-निवीस (सुष्ठु-लेखक) है, बुरा नहीं लिखेगा ।

संसार लीला मात्र है, स्वप्न-विचार है, नाट्यशाला है, आतिशबाज़ी के खेल की तरह है; आतिशबाज़ी के हाथी घोड़े सब के सब जल जाने के लिये बहार दिखाते हैं, यदि ऐसे हाथी की सूँड़ सुंदर होगई तो क्या, और ज़रा खराब हो गई तो क्या; उसे तो देखते ही देखते मिट जाना है। ऐसी कृत्रिम वस्तु के लिये क्रुद्ध चित्त और कठोर वचनी होना काहे को ?

Imperious Caesar, died and turned to clay,
Might stop a hole to keep the wind away;
Oh! that the Earth that kept the world in awe
Should patch a hole to expel the winters' flaw!

(Shakespeare)

अर्थात् तेज और प्रभाव वाला रूम का सम्राट् जो मर चुका और मिट्टी हो चुका है, संभव है कि वायु को दूर रखने के लिये (या वायु से बचने के लिये) एक छिद्र बंद करदे. या वह मिट्टी जो सारे संसार को भयभीत बनाए रखती थी, आज उस सर्दी के वेग को रोकने (या सर्दी के झकोरे से बचने) के लिये छिद्र बंद करने की नौबत पड़े।

अभिप्राय यहः—कि वह रूम का सम्राट् जो सारे संसार को अपने प्रभाव और तेज से हिलाया करता था, आज क़ब्र में राख होने के कारण हवा के झकोरों से या और बुरे प्रभावों से नहीं बच सकता ।

आँ कसर कि बर चर्ख हमी जद पहलू ।
बर दरगहे-ओ शहाँ निहादंदे रू ॥
दीदेम कि बर कंगुरा-अश फाख्ता ए ।
बिनिशस्ता हमी गुफ्त कि कू कू कू कू ॥

अर्थात्—वह महल जो आकाश से बातें करता था और जिसकी समाधि की ओर महाराज आकर्षित होते थे, हमने देखा कि उसकी मुँडेर पर पेंडुकी बैठी हुई कू कू कू कू कहती थी (अर्थात् यह आवाज देती थी कि यह महलों में रहने वाले अब कहाँ हैं ? कहाँ हैं ? कहां है ? कहां हैं ?) ।

चीस्त दुनिया सर ब्रसर पुरसीदम अज फरजानए ।
गुफ्त या ख्वाब अस्त या बादअस्त या अफसानए ॥
कीस्त आँ कस को बरो शैदा शवद जाँ मी दहद ।
गुफ्त या देव अस्त या गोलअस्त या दीवानए ॥

अर्थात्—एक बुद्धिमान् से मैंने पूछा कि संसार क्या है । उसने उत्तर दिया कि यह या तो स्वप्न है या हवा है या कहानी मात्र है । फिर मैंने पूछा कि वह व्यक्ति कौन है जो ऐसे संसार पर आसक्त होता है और प्राण दे डालता है । उसने उत्तर दिया कि या तो वह देव है या शैतान है या पागल मात्र है ।

वाए नादानी कि वक्ते-मर्ग† यह साबित हुआ ।
ख्वाब था जो कुछ कि देखा जो सुना ‡अफ़साना था ॥

---

†मृत्युकाल ‡कहानी मात्र ।

यदि सब कुछ स्वप्न ही है तो फिर चिंताएँ कैसी ?

गर यों हुआ तो फिर क्या।
और वों हुआ तो फिर क्या॥

चे हासिल जाँ कि दर दुनिया हमाँ जादन हमाँ मुर्दन।
दरीं संगम शरर आसा, हमाँ जादन हमाँ मुर्दन॥ १॥
अजल बर हस्ती-ए-मा खन्दाः दंदाँनुमा दारद।
दरीं अबरेम बर्क आसा, हमाँ जादब हमाँ मुर्दन॥ २॥
निगह ता वाकुनी बादे-अजल कश्ती बगरदानद।
हिजाबे-मौज ईं दरया, हमाँ जादन हमाँ मुर्दन॥ ३॥

अर्थात्—इस संसार में बेर-बेर जीना और बेर-बेर मरना, इससे क्या लाभ? इस पत्थर (शरीर) में मैं चिनगारी के समान हूँ जो बेर-बेर उत्पन्न होती और बेर-बेर विलीन होती है॥ १॥

मृत्यु हमारे जीवन पर खिलखिला कर हँसता है; इस शरीर रूपी बादल में हम बिजली के समान हैं, जो बेर-बेर चमकती है या बेर-बेर अदृश्य हो जाती है॥ २॥

जब तक कि तू दृष्टि खोलेगा, उतने समय में मृत्यु की वायु तेरी नौका को लौटा देगी। इस नदी की तरंग का बुलबुला बेर-बेर उत्पन्न होता और बेर-बेर मिटता है॥ ३॥

—o—

मैं सत्यता को सदैव सन्मुख रक्खूंगा। इस नाशमान् घर की वस्तुओं को स्वप्नावस्था के सुमन और कंटक (पुष्प और कांटा) समझूंगा।

"Not for life—
Which is but blade, and ear, and husk and grain
To the self-living, changeless sesamum!—

Not for this fleeting world—should holy men
Speak one word vainly."

अर्थात्—जीवन स्वरूप और अपरिवर्तन शील (आत्म देव रूपी) सुमन की अपेक्षा जो जीवन केवल छिलका, तिन्का, सिट्टा और अन्न के दाने के समान तुच्छ (अपदार्थ) है, उस ऐसे निस्सार जीवन के लिये तथा इस कृत्रिम संसार के लिये पवित्र व्यक्ति (शुद्ध पुरुष) एक शब्द भी व्यर्थ नहीं बोलते हैं। अर्थात् जो कुछ उन्हों ने इस संसार के विषय में निर्णय करके प्रकट किया है, वह ठीक और उचित है।

सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः।
(कठोपनिषद १, १, ६)

अर्थात्—यह मनुष्य (नश्वर शरीर) अन्न की भांति पकता है, (पककर गिरता है अर्थात् पैदा होकर मर जाता है), और फिर अन्न की भांति ही उत्पन्न होता है। अर्थात् मनुष्य वनस्पतियों की भांति उत्पन्न होता, मरता और फिर पैदा होता रहता है, अतः नाशमान् है।

किसकी शादी किस का ग़म।
हू अल्लाह हू दम पर दम॥

इस प्रकार के सोच विचार करते करते युधिष्ठर ने समस्त अवसरों को स्मरण किया, जहां उस के शांति के पैर फिसला करते थे, और अपने आप को खूब समझाया कि "ऐ अनजान मन ! सावधान ! इससे पहले जो हुआ सो हुआ। भविष्य में ऐसे कोमल समयों पर सम्हल कर चलना। जब कोई कुछ कटु वाक्य कहे, गाली दे, काम

बिगाड़ दे, हमारे विरुद्ध कुचक्र (साज़िश) रच रहा हो, अथवा जब चित्त अस्वस्थ हो, इत्यादि. ऐसे ही अवसरों के लिये धैर्य और शांति की अवश्यकता होती है। जब सब काम इच्छा के अनुकूल चल रहे हों, प्रसन्न रहना बड़ी बात नहीं है।

मजन चीं बरजबीं वक्ते-नजूले-दर्दो-गम ऐ दिल।
कि ऐब अस्त अज करीमां दर बरुए मेहमां बस्तन॥

अर्थात्—हे मन! दुःख और शोक के आने पर मत्थे पर बल मत डाल; क्योंकि पाहुन (अतिथि) के लिये द्वार बंद करना दाता लोगों के लिये दोष गिना जाता है।

निहंगो अजदहा-ओ-शेरे-नर मारा तो क्या मारा।
बड मूजी को मारा नफ्से-अम्मारा को गर मारा॥
न मारा आप को जो खाक हो अक्सीर बन जाता।
अगर पारे को ऐ अक्सीर गर! मारा तो क्या मारा॥

और भी लीजिए—

सहल शेरे दां कि सफहा बशिकन्द।
शेर आनस्त आँ कि खुदरा बशिकन्द॥

अर्थात् उसको दुर्बल सिंह समझ जो कि (पशुओं की) पंक्तियों को चीर डाले। सिंह वह है कि जो अपने (परिच्छिन्न अहंकार) को तोड़ डाले।

इसके पश्चात् युधिष्ठिर ने बहुत बेर जान बूझ कर अपने आपको ऐसे स्थानों पर पहुँचाया, जहाँ दुर्योधनादि ने उसे छेड़ा और दुःख देना चाहा, किंतु युधिष्ठिर ने हर बेर "क्रोध मत करो" के पाठ का व्यावहारिक अनुभव सफलता के साथ किया। जब क्रोध नितान्त त्यागा गया, तो चित्त में चैन रहने लगा, आनंद और प्रसन्नता ने

रंग जमाया, मानों मुफ़्त में खज़ाने हाथ आ गए। सब काम भी अपने आप सुधरने लगे। अनुभव ने युधिष्ठिर को यह सिद्ध कर दिखाया कि सब लोगों का यह ख्याल कि "क्रोध के बिना काम नहीं चल सकते" नितान्त मिथ्या है।

दर खुश्क साली आबे-गुहर कम नमी शवद।
बुख्ल फलक ब अहले-कनाअत चे मी कुनद॥

अर्थात्—सूखे के साल (दुर्भिक्ष) में मोती की चमक कम नहीं होती है, दैवी कृपणता धीर पुरुषों का क्या बिगाड़ती है।

प्रिय पाठको! युधिष्ठिर विचार ने पढ़ने के यह अर्थ समझ रक्खे थे जो ऊपर वर्णन हुए, अर्थात् रात-दिन लगातार चिंता और विचार का यहां तक जारी रखना कि गुरू का सुना हुआ पाठ व्यवहार में आ जाय। जब परीक्षक महाशय ने पीटना आरंभ किया, तो वह अपने विचार में "क्रोध मत करो" इस वाक्य की व्यावहारिक परीक्षा दे रहा था, और मस्त खड़ा था। उसका प्रत्येक रोम सुना रहा था कि "क्रोध मत करो", शांति! शांति!! किंतु परीक्षक महाशय के कान सांसारिक चिंताओं के कोलाहल से ऐसे बहरे (बोले) हो रहे थे कि वह कुछ देर तक यह पाठ न सुन सके। अंततः सुनते क्यों कर न, जिह्वा बड़ी बलवान् है। परीक्षक महाशय जब कोसते २ थक गए, तो युधिष्ठिर के मुख की ओर देखा; तब उन्हें होश आया, युधिष्ठिर की शांति उनके चित्त में तत्काल प्रवेश कर गई, और वे समझ गए कि ओहो! यह लड़का तो हमारा भी गुरू है हमको सिखला रहा है कि पढ़ना किसको कहते हैं। हाय हाय! इसको इतना वाक्य तो

सचमुच याद है कि "क्रोध मत करो." किंतु हमें तो यह वस्तुतः याद नहीं। इस विचार के साथ गुरूजी की आंखों में आँसू डबडबा आए। बच्चे को गोद में लिया, फूट-फूट कर रोने लगे।

ऐ वर्तमान युग के नवयुवको! यह देख तुम्हें अपनी गेहूँ जैसी जौ बेचने वाली शिक्षा पर रोना नहीं आता।

पशोः पशुः को न करोति धर्म्मं,
प्राधीत शास्त्रोऽपि न चात्मबोधः। (प्रश्नोत्तरी)

अर्थात्-संसार में पशुओं में पशु कौन है?—उत्तर, जो शास्त्रपढ़कर धर्म नहीं करता और आत्मज्ञान को नहीं प्राप्त होता।-

यथा खरश्चंदन भारवाही भारस्य वेत्ता ननु चंदनस्य॥

अर्थात्-"वह गधा जिस पर चंदन लदा हुआ हो, बोझ को तो जानता है, लेकिन खुशबूदार चंदन को नहीं" वैसे ही कर्महीन विद्वान् वेद का पशु है, वेदपाठी कहलाने का अधिकारी नहीं। यदि मस्तिष्क में पोथे भर लेने पर श्रेष्ठता निर्भर हो, तो पुस्तकालय (लायब्रेरियाँ) ऋषियों में गिने जाने चाहिये।

वाग्वैखरी शब्दकरी शास्त्र-व्याख्यान कौशलं वैदुष्यं विदुषां तद्वत् भुक्तये न तु मुक्तये।

अर्थात्—शब्दों की चुस्ती और वाक्यों की दुरुस्ती, शास्त्रों की व्याख्या करने का कौशल आदि ये सब विद्वानों के विनोद के लिये है, न कि मुक्ति के लिये।

इल्म चंदां कि बेशतर ख्वानी;
चूँ अमल दर तो नेस्त नादानी।

अर्थात्—चाहे तू विद्या बहुत पढ़ जाय, यदि अमल नहीं है, तो केवल नादानी है।

वेदांत का सहायक।

आत्मज्ञान के जिज्ञासु के लिये सबसे अधिक आवश्यक सतोगुण का प्राबल्य है, अर्थात् चित्त का हर समय आनंद और शांति की ज्योति से परिपूर्ण रहना। शोक, क्रोध और पक्षपात से भरा हुआ चित्त आत्म-साक्षात्कार का आनन्द कदापि कदापि नहीं उठा सकता।

ओरा ब चश्मे-पाक तवाँ दीद चूँ हलाल।
हर दीदा जलवा गाहे-आँ माह पारा नेस्त॥

अर्थात्—उस (तत्त्व स्वरूप) को निर्मल दृष्टि से हलाल (द्वितीया के चांद) की तरह देख सकते हैं, प्रत्येक नेत्र उस तत्वरूप चांद के टुकड़े को दर्शाने वाला नहीं है; अर्थात् हर एक आँख नहीं, बल्कि निर्मल और पवित्र आँखें ही उस सत्य स्वरूप को देख सकती हैं।

यह बिलकुल सच है कि क्रोध मोह आदि का मूलोच्छेद कभी नहीं हो सकता जब तक कि अज्ञान दूर न होले। सतीत्व, पवित्रता और सत्यता ज्ञान का परिणाम है—ज्ञान के पदचिह्न हैं, और यों कहना कि "शांति के आने पर ज्ञान की प्राप्ति निर्भर है" मानो घोड़े को गाड़ी के आगे जोतने के स्थान पर गाड़ी घोड़े के आगे लगाना है। फिर भी विद्यार्थी के लिये वासनाओं को जीतने और इन्द्रियों को वश में लाने का प्रयत्न व्यर्थ भी नहीं जाता। जैसे एक पेड़ के पत्ते और टहनियाँ काट देने से उस पेड़ की जड़ नहीं उखड़ती (अलबत्त वृक्ष की जड़ उखड़ जाने के बाद पत्ते आदि सूखकर झड़ जाते हैं) किंतु वृक्ष की टहनियाँ आदि छाँटकर उसे हल्का कर देने में इतना अवश्य होगा कि उसकी जड़ पर आरा सहज में फिर सकेगा, मूलोच्छेद में

एक प्रकारकी सहायता मिल जायगी:वैसे ही यह आवश्यक नहीं है कि काम, क्रोध, शोक, लोभ पर शक्तिमान् होते ही अज्ञान की जड़ कट जाय। अलबत्त अज्ञान की जड़ उखड़ जाने का फल यह अवश्य होता है कि मोह और दुःख नितान्त दूर हो जाते हैं]—

तत्र को मोहः कः शोकः एकत्वमनुपश्यतः। (ईशा०)

अर्थात् - जान्यो अपना आप जब, शोक मोह भयनाश।
धुंद अँधेरा नस गए, कीनो रवी प्रकाश॥

किंतु जो व्यक्ति रजोगुण और तमोगुण (काम क्रोध) रूपी पत्तियों, टहनियों को काट झाड़ कर अज्ञान के वृक्ष को हलका कर देगा, उस के लिये अज्ञान की जड़ पर महावाक्य "सर्वंह्येतद् ब्रह्म" (अथर्ववेद-माडूक्य)-यह सब कुछ ब्रह्म है—का आरा चलना सहज हो जायगा।

ना विरतो दुश्चरितान्नाशांतो ना समाहितः।
नाशांतमानसो वाऽपि प्रज्ञानेननमाप्नुयात्॥ (कठोपनिषद्)

अर्थ—जैसे मैले कपड़े पर रंग नहीं चढ़ता, या जैसे गीली लकड़ी को लाख यत्न करने से भी आग नहीं लगती, वैसे ही जो व्यक्ति विवेक, वैराग्य, शम, दम आदि साधन-संपन्न न हो, उसको आत्मज्ञान का रंग चढ़ना कठिन है, आत्मानंद की अग्नि प्रज्वलित होना मुशकिल है।

"None compasseth,
Its joy who is not wholly ceased from sin,
Who dwells not self—controlled, self—centred calm,
Lord of himself! It is not gotten else.

(Sir Edwin Arnold.)

अर्थ – उस शांत-चित्त महात्मा के आनन्द की सीमा कोई ऐसा मनुष्य कदापि नहीं लगा सकता जो स्वयं पाप-रहित न हो, या जो अपने आप पर अधिकार पाये हुए न हो, अपने आत्मा में विराजमान न हो, और अपने आप का स्वामी न हो। अर्थात् जो मनुष्य अशांत-चित्त, बुरे मार्ग से न हटनेवाले, बदमाश, आकुल-चित्त वाले और चंचलमन वाले हैं, वे कदापि उस अनंत आनंद को (जो मस्त और मुक्त ज्ञानवान् को प्राप्त होता है) भीतरी दृष्टि से नहीं पा सकते।

रफ्तम् ब तबीबो-गुफ्तम अज दर्दे-निहाँ।
गुफ्ता, कि ज गरे-दोस्त बर बंद जुबां॥
गुफ्तम् कि गिजा ? गुफ्त हमीं खूने-जिगर।
गुफ्तम परहेज ? गुफ्त अज हर दो जहां॥

भाव—मैं एक हकीम (वैद्य) के निकट गया और भीतरी (मानसिक) पीड़ा की चिकित्सा पूछी। हकीम ने उत्तर दिया कि अपने प्यारे (स्वरूप) के अतिरिक्त जिह्वा बंद कर रख (अर्थात् अपने परम मित्र आत्मदेव की चर्चा के सिवाय और किसी प्रकार की बातचीत मत कर)। फिर मैंने पूछा कि इस चिकित्सा में पथ्य क्या ? हकीम ने उत्तर दिया कि यही अपने जिगर (यकृत) का रक्त। फिर मैंने पूछा कि इस चिकित्सा में परहेज़ (संयम) किसका ? तो उसने उत्तर दिया कि हर दो जहान (अर्थात् लोक और परलोक के भोगों की इच्छा का)

खूने-खालिस खुद खुर कि शराबे बह अजी नेस्त।
दंदाँ ब जिगर जन कि कबाबे बेह अजीं नेस्त॥
दर कंज व हिदाया न तवां याफ्त खुदा रा।
दर मुस्हफे-दिल बीं कि किताबे बह अजीं नेस्त॥

अर्थात्—अपना ख़ालिस खून पी क्योंकि इससे उत्तम कोई शराब नहीं है और अपने हा जिगर यकृत को दाँतों से काट क्योंकि इससे उत्तम कोई कबाब नहीं है।

पवित्र पुस्तकों और उपदेशों अर्थात् वेदों और शास्त्रों में ईश्वर नहीं पाया जा सकता है, अपने शुद्ध हृदय रूपी कुरानमें उसे देख,क्योंकि इससे उत्तम पुस्तक और नहीं है।

ऐ बुलहवस मसोज कि आँ इश्क आतिश अस्त।
मा आँ समंदरेम कि आतिश हयाते-मास्त॥

अर्थ—ऐ लालची ! तू मत जल, क्योंकि इश्क (प्रेम) आग है, लेकिन हम आग के वह कीड़े हैं कि जिनकी ज़िन्दगी ही आग पर निर्भर है।

निम्न-लिखित अवतरण में शोपनहवर Schopenhauer ने दिखाया है कि सतोगुण की अनुपस्थिति में ज्ञान का प्रकाश होना दुस्तर है—

"When the individual is distraught by cares or pleasantry, or tortured by the violence of his wishes and desires, the genius in him is exchained and can not move. It is only when cares and desires are silent that the air is free enough for genius to live in it. It is then that the bonds of matter are cast aside and pure spirit, the pure, knowing subject, remains.

अर्थात्—जब किसी पुरुष का मन चिंताओं या हँसी-मख़ौल से विकीर्ण हो जाता है, या अपनी इच्छाओं और कामनाओं की ज़बर्दस्ती से सताया होता है, तब उसके भीतर की मेधा (वा चित्त वृत्ति) आसक्त हो जाती है और

नहीं कर सकती. केवल उसी समय जब कि चिंता और इच्छा शांत होती हैं (या दबी हुई होती हैं), तब वह मेधा जीने के लिये वायुमंडल में घूमने को स्वतंत्र होती है, उसी समय प्रकृति या माया के बंधन सब काट दिये जाते हैं और शुद्ध पवित्रात्मा (ज्ञाता, साक्षी) मात्र रह जाता है।

चो हुस्ने-तर्बियत गर्दद करीं बा पाकेथे गौहर।
जे रश्हे-आब खेजद दुर जे मुश्ते-खाक जायद जर॥ १॥

सरिश्त खाके काँ या आबे नेसां गर्चे पाक आमद।
वले अज फैजे खुर्शेद अस्त काँ जर गर्दद ईं गौहर॥ २॥

बसे जहमत बुरद दहकाँ कि दर जेरे-जमीं तुख्मे।
बरेजद बेखो याबद शाखो गीरद बर्गो आरद बर॥ ३॥

सरापा साफ शौ ता रूबुरूए यार जा याबी।
कि पेशे-खूबरोयाँ आइना मंजूर मी गर्दद॥ ४॥

अर्थ—जब तर्बियत (शिक्षा) का सौंदर्य मोती की सफ़ाई के निकट होता है तो पानी के टपकने से मोती उत्पन्न होता है और धूलि की मिट्टी से सोना उत्पन्न होता है (अर्थात् पवित्रात्मा ज्ञानी के सत्संग से जब सत्य का जिज्ञासु शिक्षा पाता है तो पूर्ण ज्ञानी का एक वाक्य भी जिज्ञासु के हृदय में मोती बन जाता है और केवल शारीरिक दर्शन से उसका हृदय सोने की भांति शुद्ध और पवित्र होजाता है)

कान की मिट्टी की (सरिश्त) खासीयत या कन्यावानी बादल [अर्थात् भाद्रपद या कार्तिक मास में बरसने वाले बादल] का पानी यद्यपि स्वच्छ होता है किंतु सूर्य के प्रसाद से वह (कान) सोना हो जाती है और यह मोती; अर्थात् यद्यपि बादल का पानी और कान की मिट्टी (सत्य के

जिज्ञासु की भांति) स्वच्छ और पवित्र होते हैं, किंतु जैसे पूर्ण ज्ञानी के सत्संग बिना सत्य का जिज्ञासु तत्त्व वस्तु को नहीं पाता, वैसे ही ये दोनों पवित्र वस्तुएँ भी बिना सूर्य के प्रसाद के सोना और मोती नहीं हो सकतीं ॥ २ ॥

किसान भूमि के भीतर बीज गिराने में यद्यपि बहुत कष्ट उठाता है जिससे बीज जड़, शाखा, पत्ते और फल को प्राप्त करे, परंतु बिना सूर्य के प्रसाद के यह सब परिश्रम निष्फल अर्थात् व्यर्थ हो जाता है, ऐसे ही सत्य के जिज्ञासु का प्रयत्न बिना पूर्ण गुरु की सहायता के व्यर्थ और निष्प्रयोजन होता है ॥ ३ ॥

शिर से पैर तक स्वच्छ बन, जिस में तू प्यारे स्वरूप के प्रकाश के सम्मुख स्थान प्राप्त करे (अर्थात् वास्तव स्वरूप का दर्शन कर सके), क्योंकि जो सुंदर हैं उनके सामने दर्पण शोभा पाता है (अर्थात् शुद्ध स्वरूप के निकट शुद्ध और पवित्र हृदय ही ठहर सकता है, अथवा सत्यस्वरूप का दर्शन निर्मल हृदय-दर्पण ही करा सकता है)।

सतोगुण का उलट (ज़िद) क्या है ?-क्रोध और शोक। क्रोध और शोक का वास्तविक स्वरूप क्या है ?-इच्छाएँ। किस प्रकार ?-जैसे जब कोई नदी या नाला अत्यंत वेग से चल रहा हो और मार्ग में किसी बहुत बड़े पत्थर के साथ टक्कर खा ले तो नदी या नाले का पानी अत्यंत कोलाहल के साथ झट झाग-झाग हो जाता है, वैसे ही जब किसी हृदय में कामना का प्रवाह वेगोद्वेग के साथ बह रहा हो और एक दम कोई रुकावट सामने आ जाय तो वह कामनाएँ एकाएक शोक और क्रोध में परिवर्तित हो जाती हैं। ध्यान से देखो, इच्छानुसार किसी काम का न होना ही

शोक या क्रोध लाता है। कामना ही शोक या क्रोध का मूल है। जिस पुरुष की कामनाएँ सब दूर हो गई हैं, जिसके संकल्प सब मिट गए हैं (अर्थात् जो ज्ञानवान है), उसने शोक और क्रोध की जड़ उखाड़ दी है।

आप्नोति हवै सर्व्वान्कामानादिश्च भवति य एवं वेद।
(अथर्व वेद मांडूक्योपनिषद।)

अर्थ—जो व्यक्ति इस (रहस्य) को समझता है, वह निस्संदेह सब मनोरथों को पा लेता है और सब से प्रथम हो जाता है।

ज्ञात्वादेवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्यु प्रहाणिः।
(कृष्णयजुर्वेद श्वेताश्वतरोपनिषद।)

अर्थ—जब तेजों के तेज को जान लिया, तो सब जंजीरें टूट गईं, दुःख दूर हो गए और मरने-जीने से छुट्टी मिली।

आपूर्यमाणमचल प्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशंति सर्वे स शांतिमाप्नोति न कामकामी॥
(गीता २।७०।)

अर्थ—जिस महात्मा ने अपनी कामनाओं को यों समेट लिया है जैसे समुद्र नदियों को अपने बीच में प्रविष्ठ कर लेता है, वही शांति (आनंद) को प्राप्त करता है। दूसरा नहीं।

क्रोध और शोक को विजय करना उसी का काम है जिस की यह दृष्टि है।

चीस्त दुनियाँ ताबे आँ आलूदा कर्दन दस्ते-ख्वेश;
बर सरे-ख्वाने-सुलेमाँ कासा लेसीदन चरास्त।

अर्थ—यह संसार क्या है जिस से अपना हाथ लिप्त किया जाय? सुलेमान के दस्तरख्वान (भोजन करने के

स्थान) पर पियाला चाटना (संसारी इच्छाओं को पूरा करना) किस काम का ?

वह ज्ञानी जो सारे संसार को अपना आप देखता है, प्रत्येक व्यक्ति को अपना स्वरूप समझता है, वह किससे अप्रसन्न हो ? उसके लिये विक्षेप कहाँ ? जब अपनी जीभ अपने दांतों में दब जाती है, तो दाँतों को निकाल डालने का किसको ख़्याल आता है।

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति ।
सर्व भूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥
(यजुर्वेद ईशावास्योपनिषद् मंत्र ६)।

अर्थ—जो सज्जन समस्त प्राणियों को आत्मा में देखता है और सब में (सब कुछ) आत्मा को जानता है, वह फिर किस से नफ़रत करे।

भजीमतहा हमी कर्दम कि शैताँ बरतरफ गर्दद ।
ज यकबीनी व यकदानी हिसारे कर्दाअम पदा ॥

अर्थ—मैं बहुत से संकल्प करता था कि जिनसे शैतान अलग हो जाय, किंतु ऐक्य-दर्शन और अद्वैत-ज्ञान से मैंने एक व्यूह उत्पन्न कर लिया है (जिसके भीतर अब शैतान प्रविष्ट नहीं हो सकता)।

बा बुते-जिंदाः कसे कि गश्त यार।
मुर्दाः रा कै दर कशद अंदर किनार ॥

अर्थ—जो व्यक्ति कि जीवित प्रिया के साथ मित्र हो गया वह मृत प्रिया को भला कब पार्श्व (बग़ल) में लेगा (अर्थात् कब चाहेगा)।

पर हाँ वह भला पुरुष जिसको ज्ञान का अविनाशी प्रसाद अभी प्राप्त नहीं हुआ किंतु शोक और क्रोध के दूर

करने में यत्नवान् है, उसको भी निराश नहीं होना चाहिए। उसके प्रयत्न क्रोध और शोक के विजय करने में तो सदैव असमर्थ ही रहेंगी? हाँ यह अवश्य है कि यदि प्रयत्न सच्चे हैं तो उस व्यक्ति को ज्ञान का अधिकारी बना देंगे। प्रयत्नों की शक्ति (energy) नष्ट तो हो नहीं सकती, विवेक में परिवर्तित होती जायगी और फिर ज्ञान के आने पर शोक और क्रोध कहाँ ठहर सकते हैं? यदि न्याय दृष्टि से देखा जाय तो विदित होगा कि शोक और क्रोध के कारण स्वभाव स्वस्थ दशा से वैसे ही फिर जाता है जैसे ज्वर, चेचक या और किसी रोग के कारण से।

प्यारे जिज्ञासु! जब ज्वर या कोई स्पर्शजन्य मारी घेर लेती है तो तुम लिहाफ़ में मुँह-शिर लपेट कर कमरे के भीतर पड़े रहा करते हो, वैसे ही जब शोक और क्रोध (जो उच्च श्रेणी के स्पर्श जन्य रोग हैं) घेर लें तो आपको उचित है कि तत्काल चेहरे को ढाँक लो और किसी को मुँह न दिखाओ जब तक कि तबीयत दुरुस्त न हो ले और स्वाभाविक प्रसन्नता (जिसके बिना मनुष्य मनुष्य कहलाने का अधिकारी नहीं) आँखों में स्पष्ट प्रकट न हो ले। प्लेग-ग्रस्त रोगी को ऐसे स्थान पर रहने का कोई अधिकार नहीं है जहाँ से उसका रोग औरों को लग सके, वैसे ही तुम्हें तनिक भी अधिकार नहीं कि तुम्हारी आध्यात्मिक बीमारी औरों को जा लगे—"को वा ज्वरः प्राणिभृतां हि चिंता"—प्राणियों के लिये ज्वर क्या है?—चिंता और शोक।

रूए कि जो दिले न कुशायद न दीदनी स्त।
हरफे कि नेस्त मग्ज दरो ना शुनीदनीस्त॥

अर्थ—वह मुखड़ा कि जिसके देखने से किसी का

चित्त प्रसन्न न हो, देखने योग्य नहीं है; वह हरफ़ (बात) कि जिसमें तात्पर्य कुछ नहीं है (अर्थात् जिसके अर्थ-प्रयोजन कुछ न हों) सुनने के योग्य नहीं।

Do any hearts beat faster,
Do any faces brighten,
To hear your footsteps on the stair,
To meet you, greet you, anywhere?
Are any happier to-day
Through words they have heard you say?
Life were not worth the living
If no one were the better
For having met you on the way,
And known the sun-shine of your stay.

अर्थ—ज़ीने में तुम्हारे पगों का शब्द सुनकर या किसी स्थान पर तुमको मिलने और सलाम करने से किसी का चित्त आप के प्रेम में लिप्त हुआ या किसी व्यक्ति का मुखमंण्डल प्रफुल्लित हुआ ? तुम्हारे मुख से निकले हुए शब्दों को सुनकर कोई मनुष्य आज पहले की अपेक्षा अधिक प्रसन्न हुआ ? निस्संदेह यह जीवन जीवित रहने योग्य कदापि नहीं, यदि कोई पुरुष मार्ग में तुमको मिलकर या तुम्हारे निवास का प्रसाद जान कर उत्तम न हो (अर्थात् यदि किसी को तुम से कुछ लाभ न पहुँच सके तो तुम्हारा संसार में जीना व्यर्थ और निष्प्रयोजन है) ।

He needs no other rosary
Whose thread of life is strung
With the beads of *love* and *thought*.

अर्थ—उस व्यक्ति के लिये कोई और माला की आवश्यकता नहीं जिसके जीवन का तार प्रेम और विचार के मनिकों से पिरोया हुआ है।

यमुना नदी के किनारे पर छाया वाले वृक्षों के बीच में अत्यंत स्वच्छ और सुथरी एक साधु की कुटिया थी, जिस में कहीं सिंह और हरिन के सुंदर चर्म बिछे थे, कहीं वृक्षों और खूँटियों पर जोगिया रंग के कपड़े लटके हुए स्थान की शोभा बढ़ा रहे थे। संयोग से एक यात्री जाति का शूद्र उसकी ओर आ निकला। कुटिया के साथ नदी पर एक उत्तम पक्का घाट देख कर उसके जी में आई कि यहाँ स्नान करें। स्नान करने के बाद शामत के मारे को यह सूझी कि अपने कपड़े भी यहीं धो लूँ। घाट पर कपड़ों को मार मार कर धोने लगा। दोपहर का समय था। साधु जी कुटिया के भीतर आराम कर रहे थे। छुआ छू के शब्द से चौंक पड़े। क्या देखते हैं कि मैले कुचैले कपड़ों की छीटों से उनके पवित्र आसन और गेरुए वस्त्र खराब हो रहे हैं और अपवित्र बूँदों से चौका बिगड़ रहा है। झटपट बाहर निकले, तो शूद्र कपड़े धोता दिखाई पड़ा। फिर जो कुछ उस गरीब पर बीती, क्या बताएँ। साधु जी ने आव देखा न ताव, मारे क्रोध के लाल होकर ढाक की एक मज़बूत लाठी उठाई और चुपके से उस विचारे के पीछे आकर खड़े हुए। इधर वह बेखबर पत्थर पर कपड़ा मारते समय झुका, उधर उसकी पीठ पर बिजली की तरह डंडा कड़का। बिलबिला कर चिल्लाने लगा, सोंटे की एक और चोट पड़ी। बेहोश होकर गिर पड़ा। साधु जीने लातों से गति बनानी आरंभ कर दी। फिर गालियों की बौछार से खूब खबर ली। जब सब तरह थक चुके तो अंत में हारकर

बैठ गए। थोड़ी देर सस्ता कर नदी में स्नान करने लगे। इतने में उस शूद्र ने भी होश सँभाला, कुटिया से कुछ दूर नीचे हटकर वह भी नहाने के लिये यमुना में कूद पड़ा। अब तक साधु जी का क्रोध कुछ कम हो चुका था, बोले— "अरे चांडाल! गरम-गरम शरीर को पानी में क्यों डाल दिया? क्या तुझको बीमारी का भय नहीं? ऐसे अवसर पर नहाने की क्या पड़ी थी? हम समझते हैं, तुम तो पहले भी एक बेर नहा चुके हो, दुबारा नहाने की क्या आवश्यकता थी?"

शूद्र—तुम भी तो सवेरे अवश्य स्नान कर चुके होगे, दुबारा क्यों नहाने लगे हो?

साधुजी—अरे! तू हमारी रीस करने लगा है? हम तो तुझ चांडाल से स्पर्श कर चुके, इस लिये स्नान करते हैं।

शूद्र—बस, मैं भी इसी से नहाता हूँ कि चांडालों के चांडाल के साथ छू चुका, नहाकर अपने को शुद्ध करूँगा।

साधुजी—(आँखें दिखाकर) एं! हमें गाली बकता है? चांडालों का चांडाल किसको कहा?

शूद्र—(हाथ जोड़ कर) नहीं महाराज, क्रोध चांडालों का चांडाल है। आप के पवित्र शरीर पर उसका आवेश हो गया था और फिर आप के हाथों और लातों की राह मुझको इस चांडाल ने छुआ। क्रोध चांडाल है। मैंने आप को कुछ नहीं कहा। क्षमा कीजिए।

यह सुन साधुजी मन में लज्जित हुए और विचार करने लगे कि कहता तो सच है। इस अवसर पर गीता का वह श्लोक स्मरण आगया जिस में लिखा है कि "जो व्यक्ति किसी प्राणी से भी शत्रुता नहीं रखता, प्रत्येक से प्रेम ही

रखता है और दीनों पर दया करता है, जिस में 'मैं मेरा' का नाश हो चुका है, जिसको सुख-दुख समान हैं, जिसको यदि हानि भी पहुँचाई जाय तो भी क्षमा कर देता है, ऐसा व्यक्ति मेरा प्यारा है।" यथा –

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च
निर्ममो निरहंकारः समदुःख सुखः क्षमी ॥ १२—१३

Who hateth naught
Of all which lives, living himself benign,
Compassionate, for arrogance except,
Exempt from love of self, unchangeable
By good or ill, patient, contented, firm
In faith, mastering himself, true to his word,
Seeking Me heart and soul; vowed unto Me,
That man I love! who troubleth not his kind,
And is not troubled by them; clear of wrath,
Living too high for gladness, grief, or fear,
That man I love!

श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं, मैं उस पुरुष से प्रेम करता हूँ (या वह व्यक्ति मुझे प्यारा है) जो समस्त प्राणियों में किसी से द्वेष नहीं करता, जो स्वयं प्रेमस्वरूप है, दयालु है, अभिमान से रहित है, स्वार्थ से रहित है, जिस में बुराई-भलाई से चलायमानता नहीं होती, जो सदैव एक रस रहता है, जो धीर और सहनशील है, संतोषी है, दृढ़ विश्वास वाला है, जो अपने को वश किये हुए है, जो अपनी वाणी व प्रतिज्ञा का पक्का है, मन और प्राण से मुझे ढूँढता है, और जो अपने जीवन को मुझ पर न्योछावर कर

चुका है, ऐसा मनुष्य मुझे निस्संदेह बहुत प्यारा है। जो मनुष्य मात्र को दुःख, क्लेश नहीं देता और न जिसे वह दुःख देते हैं, जो क्रोध से रहित है और जो प्रसन्नता, शोक या भय के प्रभाव से रहित है। (भगवद्गीता का अनुवाद अ० १२ श्लो० १३-१५)

चांडाल को छूना बाहरी शरीर को बिगाड़ता है, किंतु क्रोध से छू जाना भीतर (हृदय) का सत्यानाश कर देता है और सूक्ष्म शरीर पर नित्य दाग लगा देता है। परन्तु विस्मय इस बात पर है कि जितना ही परहेज़ हम लोग इस बाह्य चांडाल से करते हैं, उससे बहुत अधिक तपाक के साथ क्रोध का अपना तन मन अर्पण करते हैं, उसे अपनी गर्दन पर सवार कर लेते हैं। गीता में लिखा है।

मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्त मूर्तिना। (९-४)

अर्थ – मुझ अव्यक्त मूर्ति (अर्थात स्वरूप निराकार से) यह सब जगत् व्याप्त है (अर्थात् मैंने यह सारा जगत् घेरा हुआ है)।

इदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमो लोका इमे देवा इमे वेदा इमानि,
भूतानीदं सर्वं यदयमात्मा (बृहदारण्यकोपनिषद्)

अर्थ– ये ब्राह्मण, क्षत्री, समस्त लोक, देवता, वेद, समस्त प्राणी और तत्त्व, सभी कुछ एक आत्मा ही आत्मा है

महद्देवानामसुरत्वमेकं (ऋग्वेद मंडल ३)

अर्थ—देवताओं की शक्ति का कारण स्थान एक ही है। अर्थात् समस्त संसार के कारोबार मुझ (ईश्वर) ही से प्रत्यक्ष हो रहे हैं।

अर्जी मुसायबे-दौरां मनालो-शादां बाश;
कि तीरे-दोस्त ब पहलूए-दोस्त मी आयद।

अर्थ—इस समय की विपत्तियों से मत रो और प्रसन्न हो क्योंकि मित्र का तीर मित्र के पहलू से आता है, अर्थात् समय का दुःख ईश्वर की ओर से भलाई के लिये अवतरित होता है।।

और पुराणों में स्थान-स्थान पर इस प्रकार के आख्यान और वृत्तान्त आये हैं कि "अमुक राजा को पक्षी के रूप में भगवान् ने दर्शन दिए", "अमुक व्यक्ति को नारायण कुत्ते के स्वरूप में दिखाई दिया", "अमुक ब्राह्मण को (भगवान्) भिखारी के रूप में मिला" इत्यादि।

इन आख्यानों से भी यही शिक्षा मिलती है कि हमें छोटे बड़े में सर्वत्र परमात्मा ही को देखना चाहिए।

आरामो ख्वाबे-खल्क-जहाँ रा सबब तूई।
जाँ शुद कनारे-दीदओ-दिल तकियागाहे तो॥

अर्थ—संसार की सृष्टि की नींद और आराम का कारण केवल तू ही है, इस कारण दिल और आँख तुझ पर भरोसा करने वाले हो गए हैं।

बहरजा बनिगरम बाला ओ गर पस्त।
न बीनम कर दो आलम जुज यके हस्त॥
मन अज बेगानगाँ हरगिज ननालम्।
कि बामन हर चे कर्द आँ आशना कर्द॥

अर्थ—नीचे-ऊपर जिस जगह कि मैं देखता हूँ, दोनों संसार (लोक परलोक) के भीतर मैं केवल अद्वैत तत्त्व के और कुछ नहीं देखता हूं। मैं दूसरों से कदापि नहीं रोता हूँ, क्योंकि मेरे साथ जो कुछ किया उस परम प्रियतम ने किया।

यदि वही वह है, या वेदांत की शैली के अनुसार "मैं ही मैं हूँ", तो क्रोध किस पर ? रुष्टता कैसी ?

फरीदा-खालिक खल्क में, खल्क बसे रब माँहि ।
मंदा किस नूँ आखिए, जाँ तुझ बिन कोई नाँहि ॥
गुफ्तम कि गमजा-ए तो बखूनम निशान्द गुफ्त ।
ओरा गुनाह नेस्त कि फर्मूदाएम मा ॥

अर्थ—मैंने कहा कि तेरे ग़मज़े (नेत्र के कटाक्ष) ने मुझे खून में बिठाया (रुधिर से लिप्त किया), उसने उत्तर दिया कि उस (ग़मज़े का अपराध नहीं, बरन् हमने उसको ऐसी आज्ञा दी है ।

कुड़कुड़ाना—भगवत् के इस पवित्र वाक्य को आचरणतः मिथ्या करना है और नास्तिकता का दम भरना है ।

हर चे अज दोस्त मी रसद नेकोस्त ।
वफा कुनेम मलामत कशेम व खुश बाशेम ॥
कि दर तरीकते मा काफरीस्त रंजीदन ।

अर्थ—जो कुछ कि प्यारे से आता है वह सदैव लाभदायक और अच्छा ही है । हम वफादारी करते हैं और लांछन सहते हैं और आनंद रहते हैं, क्योंकि हमारे मत में शोक परायण होना पाप है ।

इंद्रप्रस्थ में जब राजसूय-यज्ञ हो चुका और सब अतिथि (पाहुने) बिदा हो रहे थे, पांडवों ने बड़े प्रेम से दुर्योधन को कुछ दिन और अपने पास ठहरा लिया और उसका खूब मान सत्कार किया । एक दिन मयदानव का बनाया हुआ विचित्र प्रासाद उसे दिखाने लगे । इस महल के फर्श में एक स्थान पर बहुमूल्य स्वच्छ पत्थर और शीशे इस उत्तमता से जड़े थे कि पानी बहता मालूम होता था, झकोरे खाती हुई नदी मालूम होती थी । इस झूठमूठ के लहरें मारते हुए पानी को देख दुर्योधन धोका खागया ।

उसे तरंगायित जल समझ तैर कर पार जाने के लिये कपड़े उतारने लगा। यह देख भीमसेन और द्रौपदी आदि ने ज़ोर से ठट्ठा लगाया।

प्यारे जिज्ञासु! यह संसार मायाका रचा हुआ घर है। आपके चित्त की प्रसन्नता के लिये रंग-रंग के पटों से सज्जित और सँवारित है। इसमें मृगतृष्णा के जल समान धोके वाले विशेष अवसर भी हैं जिनको देख तू घबरा उठता है कि "हाय! मैं डूबा, मैं डूबा!" और मारे व्याकुलता के हाथ-पैर मारने लगता है, धीरज और थिरता की लगाम डोर हाथ से छोड़ देता है, संशय और भ्रम के वश में आ जाता है, चेहरे पर हवाइयाँ छूटने लगती हैं, मानो सचमुच बला के चक्र में फँसा है। किंतु—

> बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का।
> जो चीरा तो इक कतरा-ए-खूं न निकला॥

जब अज्ञान का पर्दा दूर होता है, तो पता लगता है कि कुछ बात ही न थी। पानी तो था ही नहीं, कपड़े व्यर्थ ही उतारे, बेकार ही फ़ज़ीहत सहेड़ी।

मेरे प्यारे! खूब याद रक्खो कि संसार में जितनी वस्तुएँ प्रत्यक्ष में घबरानेवाली मालूम होती हैं, वास्तव में तेरी प्रफुल्लता और आनंद के लिये प्रकृति के हाथ ने तैयार की है। उल्टा डरने से क्या लाभ? तेरी ही मूर्खता तुझे चक्कर में डालती है, नहीं तो तुझे कोई नीचा दिखाने वाला नहीं। यह पक्का निश्चय रख कि संसार तेरे किसी शत्रु का बनाया हुआ नहीं है; बरन् तेरे प्यारों के प्यारे, तेरे ही आत्मदेव का सारा विकाश है। संसारका कोई पदार्थ तुझे वास्तव में दुःख नहीं दे सकता, बरन् प्रत्येक

पदार्थ तेरी चित्त प्रफुल्लता का कारण है। हृदय को प्रेम से भरो, मनको शुद्ध करो और देखो।

> दिलबरे-दिलरुबाए-मन मे कुनद अज बराए-मन।
> नक्शो-निगारो-रंगो-बू ताजा बताजा नौ बनौ॥
> खंदाँ रू बूदन बिह अज गंजो-गुहर बखुशीदन अस्त।
> ता तवानी बर्क बूदन अब्रे-नेसानी मबाश॥

अर्थ—मेरा दिलरुबा [प्रियात्मा] मेरे लिये नक्शो-निगार और बनाव-श्रृंगार नित नई रीतियों से नित्य-प्रति करता है॥ हँसमुख रहना मोतियों का कोष दान करने से उत्तम है, जब तक कि तू बिजली [अर्थात् हंसमुख] बन सकता है, तो भादों कुँवार का बादल मत बन।

आपत्ति—कहावत प्रसिद्ध है " सीधी लकड़ी सब कोई काट लेता है", बस तो आप यह चाहते हैं कि हम अत्यन्त सीधे हो जायँ। यदि ऐसा करें और पालिसी [पेच व कूट-नीति] को बिलकुल छोड़ दें, तो हमें संसार में रहने ही कौन देगा? हमारा गुज़ारा ही क्योंकर होगा? बलवान् लोग हमें खा न जायँगे।

> अति सीधे मत होइए, कछुक व्यंग मन मांहि।
> सीधी लकडी काटऊँ, टेढी काटें नाहिं॥

उत्तर—हम यह पूछते हैं कि क्या यह सच है "टेढ़ी काटे नाहिं? टेढ़ी लकड़ी ज्यों की त्यों रहने दी जाती है? उसका कोई व्यवहार नहीं किया जाता है?

बिलकुल मिथ्या है। समय पर सब कट जाती हैं। क्या सीधी और क्या टेढ़ी। केवल आगे-पीछे का भेद है. कटने में सब बराबर हैं।

हाँ अगर सचमुच अंतर है तो यह है कि टेढ़ी लकड़ी काटी जाकर प्रायः जलाई जाती है, ईंधन के काम में आती है, और सीधी लकड़ी कटकर जलाई नहीं जाती, बरन रंग रोगन से सजकर अमीरों, वृद्धों, महापुरुषों, शौकीनों, सुंदरियों के पवित्र कर कमलों का दंड [डंडा] बनती है, या यदि मोटी और भारी भी हो तो मंदिरों, मकानों में शहतीर का काम देती है, स्तम्भ [सुतून] का पद पाती है, इत्यादि हर प्रकार से अपनी पहिली अवस्था की अपेक्षा उन्नति पाती और विकास-समन्वित होती है, यद्यपि टेढ़ी को अवनति और विनाश प्राप्त होता है। यही दशा शुद्ध चित्त पुरुषों की है। यदि उनको प्रत्यक्ष में कोई व्यक्ति कुल्हाड़े की भाँति काटने और हानि पहुँचाने भी आएगा तो भली भाँति स्मरण रहे कि कारणों के कारण चैतन्यदेव अंतर्यामी उनको पहली अवस्था से कटवाकर भी किसी अति उत्तम और उच्च पद तक पहुँचाएगा। वह कुल्हाड़ा रूप बलवान् शत्रु मुँह तकता ही रह जायगा और यह पवित्र हृदय और शुद्धात्मा महाशय प्रत्यक्ष में कटकर उन्नति के परम शिखर पर चढ़ जायगा।

ऐ संसारी लोगो! संसार के झमेलों और जगत् के धंधों में फँसकर इस सर्वगत सिद्धांत को मत भूल जाओ कि वास्तविक शक्ति यदि है तो केवल सत्यता, पवित्रता और ईमानदारी में है।

बा साफ दिल मजादिला बा ख्वेश दुश्मनीस्त।
संगे-जनी बर आइना बर खुद हमी जनी॥

अर्थ—शुद्ध हृदय वाले मनुष्य के साथ लड़ना अपने साथ शत्रुता करना है। शीशे पर पत्थर मारना अपने ऊपर पत्थर मारना है।

शांति और स्वच्छता में केवल वे लोग भय और डर का अनुमान करते हैं जिन्होंने कभी इस बारे में अनुभव नहीं किया। प्यारो! आत्मनिष्ठ पुरुषों से पूछो, शुद्ध हृदयों से पूछो, तो विदित होगा कि उनके चित्र-विचित्र अनुभवों ने नीचे लिखी बात को प्रमाणित कर दिया है। "यदि हमारा मन ईर्ष्या-द्वेष से बिलकुल रहित और शुद्ध हो, तो संसार की कोई वस्तु हमें हानि नहीं पहुँचा सकती। शांति और आनन्द से भरे हुए सच्चे महात्माओं के निकट क्रोध-मूर्ति मनुष्य भी पानी-पानी हो जाते हैं, जंगल के भेड़िए सिंह आदि उन्हें देख प्रेम-विह्वल हो जाते हैं. सांप बिच्छू आदि अपने दुष्ट-स्वभाव को भूल जाते हैं।

बरमन अज रोशन दिली बजए-जहां हमवार शुद।
खार दर पैराहने-आतिश गुलिस्तां मी शवद॥

अर्थ—स्वच्छ हृदयता के कारण संसार का रंग-ढंग मेरे आगे ऐसे एकसाँ होगया जैसे आग की स्फुलिंग में काँटा पुष्पवाटिका हो जाता है।

यदि कोई व्यक्ति वास्तव में भलाई से भरपूर न हो और गुमान कर बैठा हो कि मैं नख-शिख अच्छा हू दूसरे शब्दों में असली माल न हो बरन् मुलम्मा हो, तो उसको परीक्षा की आग से अवश्य हानि पहुँचेगी, किंतु शुद्ध सुवर्ण तो आग में और भी चमकेगा।

सिंह जब आखेट (शिकार) को निकलता है तो जंगल में खड़े होकर ज़ोर से गर्जन करता है। गर्जन सुनते ही आस-पास के गीदड़ हरिन आदि चौंक पड़ते हैं और मारे भय के घबराकर अपने आप अपने सुरक्षित स्थानों को

छोड़ इधर-उधर दौड़ने लगते हैं। ऐसी दशा में सिंह की दृष्टि बहुत सरलता से उन पर पड़ जाती है और वे शिकार हो जाते है। ग़रीब पशुओं के अपनी-अपनी झाड़ियों या भठों को छोड़ने का कारण यह वर्णन किया गया है कि गर्जन सुनते ही उन को भ्रम (अनुमान) हो जाता है कि "आह! हम सिंह से पकड़े गए! सिंह हमारे भठ में आ पहुंचा" और अपनी ओर से बचाव के लिये वे बाहर दौड़ जाते हैं। किंतु—

खुद ग़लत बूद आँ चि मा पिंदाश्तेम।

अर्थ—जो कुछ कि हम ने सोचा था, वह स्वयं ग़लत था। वह बचाव का उपाय ही विनाश हो जाने का कारण बनता है। ठीक यही हाल घबरानेवाले मनुष्यों का होता है। भ्रम की बला के पञ्जे से बचने के लिये भाँति-भाँति के उपायों में समय पड़े खोते हैं और अपनी-अपनी सम्मति पर मोहित होते है किंतु--

अजल को जो तबीब और मर्ग को अपना दवा समझे।
पड़े पत्थर समझ पर ऐसी, तुम समझे तो क्या समझे॥

ये तजवीज़ें ही विनाश के मुख में डालती हैं।—

तर्के-कोशिश दामने-मंजिल बदस्त आवुर्दन अस्त।
राहे-खुद रा दूर मे साजी बकोशीदन चुरा॥

दूरबीनी कार दारद मर्द रा।
हम-चु खुफ्ता दर सरा कोर अज सरा॥

अर्थ—प्रयत्न का त्याग करना मंज़िल का पल्ला प्राप्त करना है [अर्थात् मित्र-लाभ की इच्छा ही बेचैनी रखती है, जब यह इच्छा (मिलाप की कामना) दूर होती है, तब ही साक्षात्कार की प्राप्ति होती है]। तू उस प्रयत्न [या ढूँढने की कामना] से अपने मार्ग को उल्टा दूर क्यों करता है।

दूर-दर्शिता मनुष्य को अंधा बना देती है, जैसे कि घर में सोया हुआ घर से अंधा (बेखबर) होता है।

The wordling seeks pleasures fattening himself like a caged fowl,
But the real saint flies upto the sun like the wild crane.
The fowl in the coop has food but will soon be boiled in the pot.
No provisions are given to the wild crane, but the heavens and earth are his.

अर्थ—संसारी (अर्थात् संसार में मन लगाने वाला मनुष्य) संसारी प्रमोद और आनंद ढूँढता है और पिंजड़े में बंद कुक्कुट की भाँति अपने आपको मोटा-ताज़ा करता रहता है, किंतु सच्चा संत-महात्मा जंगली सारस या कुलंग की भाँति सूर्य की ओर ऊंचा उड़ता है। उस पिंजड़े [खाँचे में बंद] के पत्ती को यद्यपि भोजन तो खूब मिलता रहता है, किंतु वह जल्द हांडी में उबाला जायगा। (विरुद्ध इसके) जंगली सारस को भोजन आदि तो (निस्संदेह लोगों से) नहीं मिलता, किंतु आकाश और धरती दोनों का वह मालिक है, जहाँ चाहता है, स्वतंत्रता से घूमता फिरता है।

हरचेः दर दुनिया स्त बर आजादगाँ आमद हराम।
खातिरे-जमा अस्त दर जेरे-फलक सामाने-मा॥

अर्थ—जो कुछ कि संसार में है, वह स्वतंत्र मनुष्यों के लिये निषिद्ध है। आकाश के नीचे हमारा सामान चित्तकी शांति है।

एक रँगीले महात्मा को गंगा के किनारे बैठा हुआ

देखा। साथ में पाँच मनुष्य और थे। अचानक गंगा की लहरों ने ठंढे-ठंढे जल से सब के कपड़े तर बतर कर दिये और पानी की थपेड़ों ने शेष सब को वहां से उठा दिया। वह लोग कपड़ों के भीग जाने और जाड़ा लगने के कारण बुड़बुड़ाने लगे। आह-ओह आरम्भ किया, किंतु वह महात्मा वैसा का वैसा अपने पत्थर पर डटा रहा। आनंद से मुस्करा रहा था और गा रहा था—'"मेरी प्यारी गंगा, मेरी जान गंगा।" इत्यादि।

प्यारे पाठको! ज़रा ग़ौर तो करो जिनको आप भयानक घटनाएँ और भयंकर चोटें अनुमान किये बैठे हो, वह वास्तव में "प्यारी गंगा, तुम्हारी जान गंगा" ही की रस-भरी लहरें हैं। यदि हैं, तो तुम्हारे प्रियतम आत्मदेव ही की करतूतें हैं, परमात्मा ही की द्योतक हैं। शिकायत कैसी? सब की सब डरावनी बातें और प्राणनाशक घटनायें रूप और आकार तो विष का रखते हैं, मगर बने हुए मिसरी के हैं।—

मिसरी की तूंबी रची, रंग रूपता मांहिं;
खान लग्यो जब भर्म तज, सो तब कडवी नांहिं।

स्वप्नावस्था में पुरुष वस्तुतः आप ही आप तो होता है, किंतु तमाशा यह है कि इधर तो अपने व्यष्टि रूप से अपने आपको एक फ़क़ीर या अमीर विद्यार्थी या मंत्री आदि देखता है, उधर अपने ही समष्टि रूप से सिंह, व्याघ्र, नगर, नदी उत्पन्न कर लेता है जिनको उस समय के काल्पनिक अपने-आप से पृथक समझता है। जागी हुई दृष्टि से देखें तो स्वप्न में यह जिसको अपना स्वीकार करता है, वह भी इसका ख्याल है, और जिनको अपने से पृथक मानकर

उनसे भय करता है, भयभीत हो जाता है, वह भी उसी की सृष्टि है; आप ही भेड़ है और आप ही भेड़िया; आप ही पैर है और आपही कांटा। ठीक यही दशा जागृत अवस्था में है।

मेरे ही अपना आप जिज्ञासु ! जिसको तू जागृत अवस्था समझे बैठा है, है वास्तव में वह भी स्वप्न, यद्यपि ज़रा बड़ी नाप (scale) का स्वप्न है। वास्तविक दृष्टि से व्यक्तित्व (जीव) तेरी माया का व्यष्टि रूप है, और "सारा संसार" तेरी ही माया का समष्टि रूप है। तेरी दशा निम्न-लिखित पंक्तियों के तद्वत् है—

बागे-जहाँ के गुल हैं, या ख़ार हैं तो हम हैं।
गर यार हैं तो हम हैं, अगयार हैं तो हम हैं॥ १॥
दरियाये-मार्फ़त के देखा तो हम हैं साहिल।
गर वार हैं तो हम हैं, वर पार हैं तो हम हैं॥ २॥
वाबस्ता है हमीं से गर जब्र है वगर क़द्र।
मजबूर हैं तो हम हैं, मुख्तार हैं तो हम हैं॥ ३॥
मेरा ही हुस्न जग में हरचंद मौजजन है।
तिसपर भी तेरे तिश्नाएं-दीदार हैं तो हम हैं॥ ४॥

और जब यही मामला है कि जिनसे सामना पड़े वह तेरे ही स्वरूप हैं, तेरा ही प्रकाश है।

फैला के दामे-उल्फ़त घिरते घिराते हम हैं।
गर सैद हैं तो हम हैं, सैयाद हैं तो हम हैं॥ ५॥
अपना ही देखते हैं हम बंदोबस्त यारो।
गर दाद हैं तो हम हैं, फर्याद हैं तो हम हैं॥ ६॥

फिर अप्रसन्न मुख और चिराचिरेपन (क्रोध) से प्रयोजन

कुछ लाए न थे कि खो गए हम।
थे आप ही एक सो गए हम॥
जूँ आइना जिसपे याँ नजर की।
साथ अपने दो चार हो गए हम॥

राम के पास इस समय एक तस्वीर पड़ी है। इसमें एक शिकारी तीर-कमान हाथ में लिये ताक लगाए खड़ा है। छायादार वृक्ष के नीचे हरे हरे लम्बे घास में हरी-हरी पत्तियों और पीले रंग के नरम-नरम जंगली फूलों के बीच हरिन की चमकती हुई आँख देखकर उसका निशाना कर रहा है। हाय निर्दयी! आन की आन में बिचारे हिरन को मार लेगा। ऐ अस्थिर (क्षणभंगुर) जीवन वाले मृग! मत घबरा, मत डर, परवाह न कर। जाग तो सही, तू है कौन? क्या तू हरिन है?—नहीं, हरिन तो "तुझे हरिन कहने वाले" की बुद्धि में होगा; तू तो काग़ज़ है, काग़ज़; और अपने स्वरूप (काग़ज़) की दृष्टि से तू ही शिकारी है, तू ही तीर है, तू ही प्राण नाशक सूफार (तीर का मुँह) है तुझे किसका भय? कैसी भीति? कहाँ का खटका? काहे का शोक?

> बिगडे तब जब होय कुछ बिगडन वाली शय।
> अकाल अछेद्य अभंग को कौन शख्स का भय॥
> कौन शख्स का भय बुद्धि यह जिसने पाई।
> तिसके ढिग दिलगीरी नहीं कदाचित आई॥

हे महराज मनुष्य! व्याकुल होना आपके गौरव के विपरीत है। तू अपने शरीर और नाम के तल पर तो दृष्टि डाल। अपने सच्चे अपने-आपको तो जान। जिससे तू डरता है वह तू ही है। जिससे भयभीत होता है वह तू ही है। यदि वाह्य दृष्टि से तू अत्याचार किये जाने योग्य और तुच्छ है, तो अंतर्दृष्टि से तेजोमय प्रतापवान् महाराजाधिराज भी तू ही है। अपने ही तेज और प्रताप से भयभीत मत हो। अग्नि अपने ताप से स्वतः नहीं घबराया करती। सब तेरे ही प्रकाश हैं, उनसे मत डर, निधड़क हो जा।

हंता चेन्मन्यते हंतु ७ं हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हंति न हन्यते ॥
कठोपनिषद् १-२-१९ ।

If he that slayeth thinks I slay, if he
Whom he doth slay, thinks 'I am slain', then both
Know not aright! That which was life in each
Can not be slain, nor slay.

अर्थ—यदि हंता अनुमान करता है कि "मैं मारता हूँ", यदि हन्य यह भ्रांति करता है कि "मैं मारा गया हूँ", वे दोनों ठीक नहीं जानते. क्योंकि इन दोनों में जो वास्तविक जीवन (सत्य स्वरूप) है, वह न किसी को मारता है और न कभी मारा जा सकता है।

नैनं छिंदंति शस्त्राणि नैनं दहति पावक ।
न चैनं क्लेदयंत्यापो न शोषयनि मारुत ॥
भगवद्गीता २, ३२ ।

I say to thee, weapons reach not the life;
Flame burns it not, waters cannot o'erwhelm,
Nor dry winds wither it.

अर्थ—मैं तुझसे कहता हूँ कि इस आत्मदेव (सत्यस्वरूप) को न ये शस्त्र काट सकते हैं, न उसे आग जला सकती है, न पानी भिगो सकता है, और न उसे हवा सुखा ही सकती है।

इस चित्र में हंता [शिकारी] ने जिसे हिरन समझा है वह तो स्वयं त्रिलोकीनाथ श्यामसुंदर भगवान् कृष्णचंद्र हैं। यह चमकने वाली हरिन की आँख नहीं, यह तो कृष्ण परमात्मा के चरण का पद्म है। यह हन्य [शिकार] नहीं,

यह तो प्रत्येक हृदय-कुक्कुट का हनन करने वाला हंता, अजल [मृत्यु देवता] की खबर लेने वाला ठीक अपने आप स्वयं पीतांबर ओढ़े आराम में है। प्यारे! लोग तुझे शिकार समझते हैं तो क्या, कोई तुझे हरिन कहता है तो क्या, तुझे ब्राह्मण क्षत्रिय अमीर या फ़क़ीर अनुमान करते हैं तो क्या, तू तो अपने यथार्थ स्वरूप में स्वयं कृष्ण परमात्मा, दोनों लोकों का उपास्यदेव, प्रत्येक रंग में ज्योतिर्मय प्रकाशमान है।

यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति।
तं देवः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन ॥ एतद्वैतत् ।

अर्थ—जिस में से सूर्य उदय होता है और जिसमें अस्त होता है, जिसमें समस्त प्राणी प्रविष्ट हुए, जिससे कोई पृथक् नहीं, यह आत्मा वही है।

He is the unseen spirit which informs.
All subtle essences! He flames in fire.
He shines in sun and moon, Planets and stars!
He bloweth with the winds, rolls with the waves,
He is Prajapati. that fills the worlds!

अर्थ—वह (वस्तु) अदृश्य-आत्मा है (अर्थात् वह चर्म चक्षु से न देखा जाने वाला है), जो समस्त सूक्ष्म तत्त्वों में प्रवेश करता है (या रम रहा है); वह अग्नि के भीतर प्रज्वलित है; सूर्य, चंद्रमा, नक्षत्र और तारों में वह चमकता है; पवनों के साथ वह चलता है; लहरों के साथ लहराता है; वही प्रजापति का स्वरूप है, जिससे यह समस्त संसार व्याप्त है।

राम तूहीं तूहीं कृष्ण है, तूही देवन को देव।

तूही ब्रह्म शिव शक्ति तू, तूही सेवक तूही सेव ॥
तूही सेवक तूही सेव, तूही इंद्र तूही शेष।
तूही होय सब रूप कियो सब में प्रवेश ॥
कहि गिरधर कविराय पुरुष तूही तूही राम।
तूही लक्ष्मण तूही भरत शत्रुघ्न सीताराम ॥

खुदाई कहता है जिसको आलम, सो वह भी है इक खयाल मेरा।
बदलना सूरत हजार ढब से, हर एक दम में है हाल मेरा ॥
कहीं हूं सूरज, कहीं हूँ जर्रा, कहीं हूँ दरिया, कहीं हूँ कतरा।
वफूरे-कसरत से अपनी मुझको हूआ है मिलना मुहाल मेरा ॥
तिलस्मे-इसरारे-गंजे मखफी कहूँ न सीने को अपने क्योंकर।
अयाँ हुआ हाले-हर दो आलम, हुआ जो जाहिर कमाल मेरा ॥
"हिजाबे-खुरशीदे-जाते-मानी" हुआ जहूरे-नमूदे-सूरत।
मिटा जो दुनिया से नामे-आदिम हुआ है मुझको विसाल मेरा ॥

शुनीदा-अम ब सनम खाना अज ज़ुबाने-सनम।
सनम परस्तो-सनम हम, सनम शिकन हमा ओस्त ॥
ईमाने-आलम अज रुखे नूरानिये-वेस्त।
कुफ़रे-जहाँ जे तुर्रए ज़ुल्फे-दूताइ-ओस्त ॥

अर्थ—मैं ने मंदिर में मूर्ति के मुख से यह सुना है कि मूर्ति पूजक, मूर्ति और मूर्ति विध्वंसक सब वही है। उस के तेजोमय रूप के कारण संसार का ईमान [धर्म वा आस्तिकता] है और उस के ज़ुल्फ़े-दो ता के तुर्रे से संसार की नास्तिकता है।

पूर्व पक्ष (१)-तुम कहते हो कि मनुष्य मृतक की भांति हो जाय, "नितान्त जड़, मूक, आलसी", कोई कुछ कह दे, आगे शिर ही न हिलाए। ऐसी सदाचार-विद्या सीखने से तो संखिया खा लेना ही उत्तम है।

(२) प्रायः हमको duty (कर्तव्य) विवश करता है

कि हम अवश्य रोष (क्रोध) प्रकट करें। यदि तुम्हारा उपदेश माना जाय तो कर्तव्य (duty) के ख़याल sense को ताक़ पर रखना चाहिए और निर्लज्ज होकर दिन काटने चाहिये।

(३) डारविन (Darwin) आदि ऐसे विज्ञान के प्रसिद्ध तत्त्वज्ञों की विवेचना ने यह बात आपत्ति की सीमा से बाहर पहुँचा दी है कि सांसारिक उन्नति struggle for existence (अस्तित्व के लिये युद्ध) और survival of the fittest (योग्यतम के लिये जीवित बचना) पर निर्भर है जिसके यह अर्थ हैं कि Evolution [विकास] के लिये न केवल घोर प्रयत्न ही करना बल्कि संग्राम भी करना उचित है। लेकिन तुम्हारा कथन विज्ञान के इस तीव्र गति के भी विरुद्ध चलना चाहता है, उल्टी गंगा बहाता है।

(इस प्रश्न का उत्तर 'सुलाह कि जंग, गंगा तरंग" नामक अध्याय में विस्तार पूर्वक आयगा)

राम—(१) हम तो कहते हैं कि वेदांत संखिया ही खिलाता है, किंतु यह वह संखिया है जो पाप-रूपी कुष्ठ को दूर करदे। यह वह विष है जिसको खानेवाला शव नहीं बल्कि शिव-शंकर [नीलकंठ] बन जाता है। यह वह सुस्ती है जिसपर संसार-भर की चुस्ती न्योछावर कर दी जाय। यदि किसी को वेदांत जड़ता और आलस्य लानेवाला मालूम होता है तो इसके यह अर्थ हैं कि चेतनघन रूपी वेदांत को उसकी आंख के साथ वही संबंध है जो विश्व-प्रकाशक सूर्य को विचरनेवाले निशाचरों की आँखें के साथ हुआ करती है, अर्थात् उन पशुओं की दृष्टि के साथ कि जो अँधेरे के अभ्यासी हैं।—

वफ़ूरे-जलवा हम यकसर हिजाबे-जलवा हस्त ईं जां;
नकाबे-नेस्त दरिया रा मगर तूफ़ाने-उरयानी।

अर्थ— सरासर तेज के प्रकाश की अधिकता ही यहाँ तेज का आवरण है। सिवाय तूफ़ान की उरयानी (नंगा पान) के नदी को कोई पर्दा नहीं, अर्थात् नदी की तरंगों क उठना ही उसको ढक देता है, जैसे सूर्य का तेज दोपहर के समय सूर्य को छुपा देता है।

माना कि वेदांत के ग्रंथों में इस प्रकार के श्लोक हैं—

व्यापारे खिद्यते यस्तु निमेषोन्मेषयोरपि।
तस्यालस्य धुरीणस्य सुखं नान्यस्य कस्यचित्॥
अष्टावक्रगीता १६-४

अर्थ— जिसका मन व्यापार से इतना उठा हुआ है कि उसके लिये आँख मीचने और खोलने की क्रिया भी बुरी लगती है, उस (प्रत्यक्ष में सुस्त) ज्ञानवान् को सच्चा आनंद प्राप्त है और किसी को भी नहीं।

'व्यापार से मन उठने" से प्रयोजन नीचे लिखे पद्य की तरह मृत्यु के नहीं है।—

बकदरे-हर सकूँ राहत बुवद बिंगर तफ़ावत रा,
दवीदन, रफ़्तन, उस्तादन, निशिस्तन, खुफ़्तनो-मुर्दन।

अर्थ—प्रत्येक ठहराव के अनुसार आराम होता है, तू इस अंतर को देख, दौड़ना, चलना, खड़ा होना, बैठना, सोना और मरना अर्थात् इन समस्त अवस्थाओं के बीच जो थिरता प्राप्त होती है, उसके अंतर को तू देख।

जिस पुस्तक में यह उपर्युक्त श्लोक दिया गया है, उस में एक और श्लोक भी दिया है। उसमें एक और श्लोक व्यापार से उपरति का तात्पर्य स्पष्ट कर देता है। यथा—

निर्ममो निरहंकारो न किंचिदिति निश्चितः।
अंतर्गलित सर्वाशः कुर्वन्नपि करोति न॥
—अष्टावक्रगीता १७-१६।

अर्थ—जिस पुरुष ने मैं, मेरा, अर्थात् अहं मम-भाव को दूर कर दिया है, जिसके चित्त में यह निश्चय जम गया है कि जो कुछ देखने सुनने में आता है, केवल ख्याल ही ख्याल है। जिसके भीतर समस्त इच्छाएँ दूर और नष्ट हो चुकी है, वह वीर है; वह वास्तव में कुछ भी नहीं करता, चाहे प्रत्यक्ष में वह काम करता भी दिखाई दे।

मज़दूर (कुली) बेचारा दिनभर बाज़ारों में पत्थर कूटता है या और किसी प्रकार की कड़ी मिहनत करता है, और मारे मिहनत के शरीर को पसीना-पसीना करके अपना बसर [गुजरान] करता है, बड़ा काम करने वाला है। ऊँचा हाकिम न सड़क पर रोड़ी कूटता है, न यात्रियों का असबाब उठाता है, न खेत में जाकर हल चलाता है, न कोई और दैवी कष्ट सहन करता है, केवल जुबान हिला छोड़ता है, यह बिलकुल निकम्मा और सुस्त है।

पाठक ! जैसे यह तर्क निस्सार है, वैसे ही वेदान्त-निष्ठ ज्ञानवान् को औरों की भाँति बात-बात पर निराश और व्याकुल होते न देखकर या शरीर की दृष्टि से चुप और बेकार रहते देखकर यह कहना कि वेदांत निकम्मा और सुस्त कर देता है, सरासर निरर्थक है। ज्यों-ज्यों पद उच्च होता जाता है, स्थूल इंद्रियों से काम लेना कम होता जाता है। ऊँचा हाकिम मज़दूरों की तरह हाथ पैर नहीं हिलाता; केवल जुबान (अर्थात् सूक्ष्म इंद्रिय) हिलाता है; किंतु उसकी आज्ञाएँ सहस्रों मज़दूरों को दौड़ धूप में डाल देती

हैं। इसी प्रकार सच्चा महात्मा सत्संकल्प (मेस्मेरीजम की जान, मैग्निटिज़्म के प्राण, और लार्डों का लार्ड) जिसके "ख़्याल ही" में संसार स्थिर है, सांसारिक चिन्ताओं का बोझ उठाना तो कुजा, चाहे ज़ुबान भी न हिलाए, उपदेश भी न करे, किंतु उसका सत्संकल्प (भीतरी आज्ञा) ही सैकड़ों, सहस्रों उच्च हाकिमों के चित्तों, ज़ुबानों और शरीरोंको दौड़ धूप में डाल देता है। अब चाहे उसे "जड़, मूक, आलसी" कहो, चाहे "चेतनघन, इनर्जी (Energy) का भंडार और शक्ति का जौहर" कहो। प्यारे पूर्वपक्षी ! जाकर एक बेर अद्वैतनिष्ठ महात्मा के दर्शन तो करो, फिर देखते हैं तुम्हारे आक्षेप कहां जाते हैं ? यह वह व्यक्ति है जिसके तेजोमय मस्तक पर चंद्रमा की तरह प्रकाशमान अक्षरों में यह लिखा है—"हां, इसका पूजन करो ?" वही तद्वनं (विश्व का उपास्य) है ? (केनोपनिषद)।

मनअम कुनी ज इश्के-वै ऐ मुफ्ती-ए-जमां !
माजूर दारमत कि तू ओ रा न दीदाई ॥

अर्थ—ऐ संसार के काज़ी (न्याय चुकाने वाले), उस (परमेश्वर) के प्रेम से तू मुझको मना करता है। जा, मैं तुझको क्षमा करता हूँ, क्योंकि तू ने उस (परमात्मा) को देखा नहीं है।

दिल ढेर बुखारों के लगाता है कफा में।
उड़ जाते हैं खुरशेद सा जब मुँह नजर आया ॥

(२) क्या सचमुच ड्यूटी (कर्तव्य) इस बात की इच्छुक हुआ करती है कि हमारा चित्त विक्षिप्त वा दौड़ धूप में हो ?

जहां तक राम का ख्याल है, कदापि नहीं। हाँ यह

प्रायः देखा गया है कि जब स्त्रियाँ या मर्द लड़ झगड़ रहे हों, और चाहे किसी पक्ष से, झगड़े वा क्रोध का कारण पूछा जाय, तो यही उत्तर मिलेगा कि "विरोधी पक्ष ने ऐसा क्यों किया" ? या "वैसा क्यों न किया ?" जिससे स्पष्ट पाया जाता है कि क्रोध और शोक का कारण "अपने मन से दोष का उत्पन्न हो जाना" तो बहुत कम ही होता है, हाँ यदि दूसरों की ओर कर्तव्य के पूरा करने में कोताही (कमी) हो जाय, तो झटपट क्रोध की ज्वाला भड़क उठती है। अतः कैसी हँसी की बात है कि अपना कर्तव्य तो नहीं, औरों का कर्तव्य तुनुक-मिज़ाज लोगों को शोक और चिंता के कूप में डाले।

बरौ बकारे-खुद ऐ वाइज ! ईं चिह फर्यादस्तं।
मरा फताद दिल अज कफ, तुरा चिह उफ्तादस्त॥

अर्थ—जा, ऐ उपदेशक ! अपना काम कर। यह क्या कोलाहल है ? मेरा हृदय (अपने प्यारे के प्रेम में) हाथ से निकल गया है। भला तेरा इस में क्या गया है ?

गर हमने दिल सनम को दिया फिर किसी को क्या ?
इसलाम छोड कुफ्र लिया फिर किसी को क्या ?
हमने तो अपना आप गिरेबाँ किया है चाक।
आप ही सिया सिया न सिया फिर किसी को क्या ?

"नहीं महाशय ! कुछ अवसरों पर अपनी ड्यूटी भी विवश करती है कि हम भवें चढ़ाएँ, आँखें दिखाएँ और धमकी से डराएँ।" राम का इसमें यह कहना है कि "शांति से काम लेना और चित्त पर सवार रहना" क्या यह स्वयं तुम्हारा उत्तम कर्तव्य नहीं है ? यदि लड़ाई (परीक्षा) के अवसर पर हथियार से काम न लिया तो उसका लाभ ही

क्या? यदि क्रोध और भड़कन उत्पन्न करने वाले समयों पर शांति को न बर्ता, तो इस श्रेष्ठ धर्म (शांति) को वर्तना ही किस अवसर पर है? आगे-पीछे तो प्रत्येक मनुष्य शांत रहता है, किंतु धर्मात्मा वही है जो हृदय को हिला देनेवाले अवसरों पर चित्त को वश में रक्खें, शोक और क्रोध को प्रवेश न पाने दे।—

जफर आदमी उसको न जानिएगा, वह हो कैसा ही साहबें-फैह्मो-जका।
जिसे ऐश में यादे-खुदा न रही, जिसे तैश में खौफे-खुदा न रहा॥

जब कोई सामाजिक, पारिवारिक, राजनैतिक, या धार्मिक कर्तव्य इस प्रकार का उपस्थित हो जाय जो आपको तंग और तीक्ष्ण होने पर विवश करता हो, तो निश्चयतः जान लो कि उसे ड्यूटी (कर्तव्य) समझना तुम्हारी भूल है। और तुम्हारे समाज, परिवार, रियासत या धर्म का वह अंश जो ऐसी ड्यूटी से संबध रखता है, अवश्य सुधार के योग्य है। [वह रस्में जो तुम्हारे कुढ़ने और शोकातुर होने का कारण होती हैं, वह रस्में तुम्हारे लिये अयुक्त हैं। उनका अनुसरण करना तुम्हारा धर्म नहीं है। सिंह बनो, और ऐसे जुए को बेखटके शिर से उतार दो। इस बात की ज़रा परवा न करो कि वर्षों से यह रीति चली आती है]।

शिक्षक (उस्ताद) लोगों का योरप और एशिया में कई शताब्दियों तक यह ख़्याल रहा कि कर्तव्य की दृष्टि से बच्चों के भीतर शिक्षा घुसेड़ने के लिये बिना रोक टोक उनकी खाल उधेड़ना आवश्यक है। "बेंत का बचाकर रखना बच्चे को बिगाड़ना है। If you spare the rod, you spoil the child," किंतु आज पूर्ण रूप से यह सिद्ध

हो चुका है कि ऐसा ख़्याल बिलकुल नीच था। बच्चों को, चाहे बूढ़ों को, यदि हम लाभ पहुंचा सकते हैं, तो क्रोध से नहीं, प्रेम ही से पहुंचा सकते हैं। शिक्षा और शिक्षा की सीमा में Sacrament of the rod (कोड़ों के शासन) के स्थान पर Sacrament of love (प्रेम-शासन) लाने की तजवीज़ें हो रही हैं। बच्चों के लिये Kindergar- ten (बाल-बाटिका) कई स्थानों पर प्रचलित हो गया है और शेष स्थानों पर धीरे-धीरे चल जायगा।

इतिहास साक्षी देता है कि तरह-तरह की रस्में और रिवाज पृथ्वीतल पर जलबुद्बुद की भाँति आते रहते हैं और फिर मिट जाते हैं। एक दिन था जब क्रीत-दासों का रहना सर्वत्र आवश्यक समझा जाता था; अब उसको सब से बड़ी घृणित प्रथा ही नहीं बरन् पाप मानकर बंद किया गया है। इसी प्रकार सती होना, ठग्गी आदि एक समय प्रचलित थे, अब निषिद्ध हैं। अतः—

Our little systems have their day.
Have their day and pass away.
All are broken lights of Thee.
And Thou, O Lord, art more than they.
—Tennyson.

अर्थ—हमारे छोटे-छोटे प्रबंध अपने अपने दिन गुज़ार कर (या अपना उदय-काल बिताकर) बीत जाते हैं। ये सब (ऐ सत्यस्वरू!) तेरे ही टूटे फूटे (तेज व मंद) प्रकाश हैं और ऐ ईश्वर! तू उन सब से महान् है।

परिवर्तनशील और नाशमान सांसारिक रस्मों के वश में होकर सच्ची उन्नति को रोक देना, आत्मा को धब्बा

लगाना, अपनी शक्तियाँ (energies) को क्षीण करना है, असली ब्रह्मचर्य को खोना है, और मनुष्या-देह रूपी चिंतामणि से कौवे उड़ाने का काम लेना है।

पशुओं के प्रायः व्यापारियों के यहाँ यह प्रथा है कि एक बहुत मोटा और लंबा रस्सा फैलाकर उसके थोड़े-थोड़े अंतर पर छोटी-छोटी रस्सियाँ फंदों के रूप गाँठ देते हैं, और छोटी रस्सी का एक फंदा एक पशु के गले में, दूसरा दूसरे पशु के गले में डालते चले जाते हैं। इसी प्रकार इसी तरह कई पशु एक ही लंबे रस्से के साथ वश में रक्खे जाते हैं। ऋग्वेद के ऐतरेय आरण्यका में लिखा है—

तस्य वाक्तन्तिर्नामानि दामानि तदस्येदं वाचातन्त्या।
नामाभिर्दामभिः सर्वं सितं सर्वं हीदं नामनीति॥ (२-१-६-१)

अर्थ—(प्राण के हाथ में) वाचा का लंबा रस्सा है और नाम फंदे हैं, अतः वाचा के रस्से और नाम के फंदों के साथ यह सब कुछ बाँधा हुआ है, क्योंकि सब वस्तुएँ नाम ही नाम तो हैं।

जब कोई व्यक्ति अपना नाम पुकारा जाता सुनता है, तो झटपट उधर को खींचा जाता है, मानो गले के फंदे के द्वारा घसीटा जा रहा है।

रिश्तए दर गर्दनम अंदाख्त दोस्त।
मीकशद हरजा कि खातिरख्वाहे ओस्त॥

अर्थ—मेरे कंठ में मित्र ने संबंध की रस्सी डाल दी है। अब जो स्थान उसके मन-प्रिय है, मुझे वहाँ ले जाता है।

एक और श्रुति में आया है—

अन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न स वेद। यथा पशुरेव ७ं
स देवानाम्। (बृह० अ. १ ब्र. ४ मं० १०)

अर्थ—अब जो देवताओं की इस समझ से उपासना करता है कि वह देवता (उपास्य) और है और मैं (उपासक) और हूँ, वह बिलकुल कुछ नहीं जानता; वरन् वह (उपासक) उपास्य (देवताओं के पशु की भाँति है।

उसी के अनुसार भगवान् शंकर ने लिखा है।

अन्योऽसावहमन्योऽस्मीत्युपास्ते योऽन्य देवताम्।
न स वेद नरो ब्रह्म स देवानां यथा पशुः॥

अर्थ—"मैं और हूँ और यह और है" यह ख़्याल करके जो और (अपने से भिन्न) देवता का उपासना करता है, वह व्यक्ति ब्रह्म को नहीं जानता है, वह देवताओं के लिये बिलकुल पशु के समान है।

जब तक मनुष्यजात बहुत छोटा होता है, स्वतंत्र रहता है, मस्त फिरता है, दूध की दो नदियाँ उसके लिये जारी हैं, स्वर्ग में नित्य निवास करता है। इधर गेहूँ का दाना खाना आरंभ किया, शरीर को ढाँकना सीखा, समझ के पेड़ का फल चक्खा, 'यह और है मैं और हूँ' की पट्टी पढ़ी; उधर झट नाम, जाति आदि का फंदा गले में पड़ा, दासता की हँसली में बंदी हुआ, पशुओं की भाँति क़ैद में फँसा, बंधन पड़ गए, और संसारी ड्यूटी गर्दन पर सवार हुई, जो ज़रा दम नहीं लेने देगी, दे चाबुक पर चाबुक जड़ती जायगी।

सन्ध्या-पूजा के लिये समय नहीं बचा, क्या करें, धंदे नहीं छोड़ते, ड्यूटी बड़ी ज़बर्दस्त है ! आज नहाने के लिये टायम [समय] नहीं मिला, ड्यूटी, (कर्तव्य) !

दफ़्तरों में पिसनहारी की तरह चक्की रगड़ते आए। घर में वही दफ्तर का काम मौजूद है, सत्संग की फ़ुर्सत

कहाँ ? ड्यूटी (फ़र्ज़) ! लड़की या लड़के का विवाह है, खर्चे पूरे करने को घर गिरवी (बंधक) रखने की चिंता रात-दिन घेरे है, (ड्यूटी) ।

ऐ चाटुकारिता (खुशामद), वंचकता (फरेब), धोका और उत्कोच (रिश्वत) ! तुम ही मुझे अपनी शरण में लो और निर्धनता की अवमानता (disrespect) से बचाओ ! ड्यूटी ! धन और मान की अभिलाषा की चोटें सहता रात-दिन गेंद की तरह लड़खड़ाता चला जाता है, और इस का नाम ड्यूटी (कर्तव्य) रक्खा हुआ है ।

हाय सच्ची ड्यूटी (कर्तव्य) ! आ ! तेरा नाम ले ले कर तरह-तरह की बुराइयाँ मेरे प्यारों का खून पी रही हैं ।

गंगा उठो कि नींद में सदियाँ गुजर गईं ।
बच्चों के शिर पै टेम्ज सी नदियाँ गुजर गईं ॥

क्या खौफनाक ख्वाब है पुर दर्द हाल है ।
नर्की की रूहो-जान पर बदिया गुजर गईं ॥

मेरे प्यारो ! यह संसारी ड्यूटी (कर्त्तव्य) तुम पर ऐसे पड़ी है जैसे सवेरे के समय बच्चों पर गरम लिहाफ़ । पहले तो गरम लिहाफ़ बच्चों की आँख खुलने नहीं देता; अगर वे जाग भी पड़ें, तो बोझल होने के कारण उनको उठने नहीं देता और उनकी आवाज़ को भी बंद muffled) कर रखता है, मां के कान तक पहुँचने से रोकता है । प्यारे ! यह मीठी नींद कड़वे स्वप्ने ला रही है । लिहाफ़ को अगर अपने आप उठा नहीं सकते, तो ज़ोर से चिल्लाओ, किसी न किसी तरह से अपना रुदन जगदंबा (उमा) ब्रह्मविद्या तक पहुँचाओ । तुम्हारी प्यारी माँ (श्रुति भगवती)

उठाकर तुम्हें छाती से लगायगी और अमृत-रूपी शक्तिदाता) दूध (ज्ञान) पिलायगी।

उस देश के निवासियो! जहाँ की कन्याएँ (सावित्री) अपनी पवित्रता की शक्ति से यमराज के चंगुल से पुरुष को छुड़ाकर लाती थीं और जहाँ के लड़के नचिकेता। साक्षात् मृत्यु के मुख से अमृत निकालकर लाते थे, प्यारे भारत निवासी! ज़रा ग़ौर करके बता कि तू अपने को अमर (मृत्यु पर विजयी) पाता है कि मर जानेवाला? तेरे भीतर आनंद ही आनंद हर समय प्रकाश रहता है कि शोक और क्रोध का अंधकार छाया रहता है? तेरे भीतर अनंत शक्ति नज़र आती है कि सड़ती हुई दुर्बलता की दुर्गंध आती है? यदि तू नाशवान्, दुखिया और कमज़ोर है, तो यह पाप का फल है कि तू ब्रह्महत्या कर रहा है, बुद्धि (सोच विचार) रूपी गौ को सांसारिक इच्छाओं [कसाइयों] के हाथ बेच रहा है, अचिरस्थायी इच्छाओं की दासता को ड्यूटी (कर्तव्य) मानकर रक्त-मांस के बंदीगृहों में टोकरी ढो रहा है।

ड्यूटी के शाब्दिक अर्थ क्या हैं?--"जो हमें करना चाहिए, कर्त्तव्य"। क्या अमुक व्यक्ति जो कहता है वह बनाना चाहिए? या अमुक शैली या प्रथा जो आज्ञा दे वह पूरा करना चाहिए? अंततः क्या करना चाहिए? यदि धन की चाह है तो नौकरी करना चाहिए; यदि लोगों की हवाई वाह वाह की कामना है तो विवाह और मृत्यु के अवसर पर क़र्ज़ लेना चाहिए; अगर शारीरिक सुविधा की चाह है तो स्त्री पुत्र की अधीनता चाहिए। मेरे प्राणप्रिय! "चाहिए"

का पालन (जुआ) पीठ पर तब तक पड़ सकता है, जब तक टट्टू बनानेवाला चाह भीतर रहती है। इस चाह को मिटाना चाहिए।

सब को दुनिया की हवस ख्वार किये फिरती है।
कौन फिरता है यह मुर्दार लिए फिरती है॥
चाह चमारी चूहड़ी, अति नीचन की नीच।
तू तो पूर्ण ब्रह्म है, जे चाह न होवे बीच॥

समस्त बाहरी कर्तव्य तेरी ही चाह पर ठहरे हुए हैं। यह चाह वह पुंश्चली महिला (फाहिशा) है कि नर देह को अपना भोगांग बनाकर कभी कहीं कुकर्म कराती है, कभी कहीं। यह चाह ही बोझों के कूप में गिराती है।

ऐ प्यारे ! यदि तेरी कोई ड्यूटी है, यदि तुझको कुछ करना चाहिए तो वह यह है कि इस "चाहिए" से पीछा छुड़ा इस चाह के धब्बे को मिटा, तुझे कुछ नहीं चाहिए। तेरी क़सम, तू तो नित्य तृप्त है। भ्रांति में पड़कर दीन और दरिद्र क्यों बन रहा है? यदि तेरा कोई कर्तव्य है तो यह है कि अपने दबे हुए कोष को निकाल और अपनी शाहंशाही को सँभाल। शेष सब कर्तव्य तेरे माने हुए कर्तव्य हैं।

चाह घटी, चिंता गई, मनवा बे परवाह।
जिनको कछू न चाहिए, सो शाहनपति शाह॥

संसार की आँख में चाहे राजा या सितारेहिंद कहावो, किंतु जब तक इच्छाओं के मैले कुचैले फटे-पुराने कपड़े तुम्हारे नहीं उतरे और चिंताओं के सूखे टुकड़े तुम्हारे पेट में पेचिश डाल रहे हैं; जब तक तुमने स्वराज्य (आत्मराज्य) को नहीं सँभाला, और कामनाओं के दास बने हुए हो; तब

तक तुम प्रतिष्ठासंपन्न काहे के ? कामनाओं को छोड़ने से यह अभिप्राय नहीं है कि मुर्दे की भाँति निश्चेष्ट और गतिशून्य हो जाओ; वरन् इसके यह अर्थ हैं कि विश्व-वाटिका में एक सामान्य मज़दूर बन कर जीवन किरकिरा करने के स्थान पर अपने सच्चे प्रताप और गौरव के साथ सैर करो। इस प्रकार जो काम तुम्हारे शरीर से हो जायगा, आनंद से भरा हुआ (Graceful) होगा। सुलतान भौं [पलक] के सँकेत से कुछ का कुछ कर सकता है, पर भय-भीत दीन दास से तो क्या बन पड़ता है।

संसार के और सब विषय तुम्हारे ऐच्छिक (Optional) हैं, यदि कोई अनिवार्य (Compulsary) विषय है तो सब इच्छाओं को मिटाने वाली ब्रह्म-विद्या का प्राप्त करना है। अय त्रिगुणानंदित (Thrice blessed) ! तेरी ही लिये वेद ने लिखा है।

पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।
(ऋग्वेद मं० १० सूक्त ९०)

अर्थ—"तीन भाग इसके आनन्दमय अविनाशी स्वर्ग में हैं और केवल एक भाग संसार में"। फिर संसार की चिंता में क्यों पच रहा है ?—

I searched through strange pathways and winding
For truths that should lead me to God;
But further away seemed the finding
With every new by-road I trod.
I searched after wisdom and knowledge—
They fled me, the fiercer I sought;
For teachers, text books and College

Gave only confusion of the thought.
I sat while the silence was speeking,
And chanced to look into my soul;
I found there all things I was seeking—
My spirit encompassed the whole.

अर्थ—मैं ने विचित्र और पेचीले मार्गों से उन तत्त्वों की खोज की जो मुझे ईश्वर तक पहुँचा सकें, किन्तु प्रत्येक नई सड़क से जिस पर कि मैं चला तत्त्व को दूर ही पाया। फिर मैं ने बुद्धिमता और विद्या की खोज की, परन्तु जितनी ही अधिक खोज की उतने ही वे मुझ से दूर भागे, और गुरुओं, किताबों और विद्यालयों ने मेरे विचारों को उल्टा गड़बड़ कर दिया। मैं (थककर) बैठ गया इस तरह से जब निस्तब्धता की दशा विद्यमान थी और संयोगतः अपने भीतर ध्यान किया, तो इस अंतर्दृष्टि से मुझे वह सब कुछ मिल गया जिसकी मैं खोज में था और मेरी आत्मा ने सब को व्याप्त कर लिया।

यल्लाभान्नापरो लाभः यत्सुखान्नापरं सुखं;
यज्ज्ञानान्नापरं ज्ञानं तद्ब्रह्मेत्यवधारयेत् । (उपनिषद)

तात्पर्य—एक ब्रह्म से बढ़कर कोई वस्तु प्राप्त करने के योग्य नहीं है, और सिवाय इसके कोई वस्तु आनंद देने योग्य नहीं है, कोई वस्तु जानने योग्य नहीं, क्योंकि जो ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्म ही होता है।

मुंडकोपनिषद् के आरंभ में है:—

ॐ ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता।
स ब्रह्मविद्यां सर्व विद्यां प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ॥ १ ॥

अर्थ—ब्रह्मा देवताओं में सब से प्रथम था। संसार को

उत्पन्न करने वाला और लोक को बचाने वाला। इसने अपने सब से बड़े पुत्र अथर्व को ब्रह्म विद्या दी जिस विद्या पर समस्त लोक स्थिर हैं।

राजाओं के यहाँ यह परिपाटी चली आई है कि सब से बड़े पुत्र को राज-तिलक देते हैं, भूमि देते हैं, धन और रत्नादि देते हैं। ब्रह्मा को अथर्व ऋषि को पैत्रिक स्वत्व देने में क्या सूझी ? इससे मालूम होता है कि ब्रह्मा दरिद्र होगा। हाय ! ब्रह्मा को तो समस्त पृथ्वी का रचनहार और स्वामी लिखा है, इंद्र आदि समस्त देवतों से वृद्धतम बतलाया है। वह दरिद्र किस प्रकार था ? न तो ब्रह्मा निर्धन ही था और न ब्रह्मा को किसी का भय ही था और न ब्रह्मा अनजान ही था। जिसने समस्त प्राणियों को उत्पन्न किया, वह प्रत्येक वस्तु के गुण और मूल्य से अवश्य जानकार था, प्रत्येक वस्तु के तत्त्व से अवश्य परिचित था। उसने समझ बूझ कर समस्त वस्तुओं में सब से अधिक मूल्यवान अर्थात् अमूल्य रत्न अपने हृदय-खंड को दिया। नहीं-नहीं, उसने अपनी समस्त संपत्ति (स्थावर जंगम) की कुंजी या कागज (ब्रह्मविद्या) अपने सच्चे उत्तराधिकारी को सौंप कर उसे अपना मुकुट-सिंहासन सौंपा। उसे अपनी पदवी देकर इंद्र आदि अधीन महाराजों का शासक बनाया।

तां यो वेद। स वेद ब्रह्म। सर्वेऽस्मै देवा बलिमावहंति।

(कृष्ण यजुर्वेद)

अर्थ—जो कोई उनको जानता है, सब देवता उस व्यक्ति को बलि देते हैं।

ऐ वासिष्ठ, आत्रेय, भरद्वाज जैसे ऋषियों से अपना

गोत्र मिलाने वालो ! ऐ राम, कृष्ण, बुद्ध और शंकर के देश में रहने वालो ! तुम कल के नातजुर्बेकार बच्चों का अनुकरण करते हो जिन्होंने आत्मिक उन्नति का अभी मुँह नहीं देखा ! उतारो पैरों से बूट और सर से टोपी, और बीच बज़ार ईंधन का गट्ठा उठाकर, आँसुओं की ओस से भरी हुई आँखों के दो कमल भेंट लो, और किसी वेदवित् पूर्ण ज्ञानी के चरणों में डंड की भांति जा गिरो। केवल इसी में तुम्हारा कल्याण है; केवल इसी भांति तुम्हारा जाड़ा (पाला) उतरेगा; केवल इसी तरह तुम्हारे दुःखों की रात कटेगी; केवल इसी तरह तुम्हारी धुँध दूर होगी; केवल इसी तरह तुम्हारे पाप जलेंगे; केवल इसी में तुम्हारी प्रतिष्ठा (सम्मान) और गौरव है।

आफताब अज औजे-इज्जत रुख्र निहद बर खाके-पाश।
हर कि बर रूयश नशीनद गिर्द अज दर्गाहे-मा॥

अर्थ— सूर्य प्रतिष्ठा (सम्मान) की उच्चता पर होते हुए भी उस पूर्ण ज्ञानी के चरणों पर अपना मस्तक रखता है, अर्थात् सब का शिरोमणि होने पर भी सूर्य उस पूर्ण ज्ञानी के चरण चूमता है। और जो तुच्छ होते हुए उस ज्ञानी के समक्ष [अभिमान से] बैठता है, उससे कहो कि हमारे आश्रम से वापिस लौट जाय, अर्थात् जो पूर्ण ज्ञानी के समक्ष तुच्छ होकर दीनता पूर्वक नहीं झुकता, वह ईश्वर के पवित्र देश में स्थान पाने योग्य नहीं।

चोले जिन्हाँ दे रतडे कंत तिन्हाँ न दे पास।
धूड़ तिन्हाँ दी जे मिले नानक दी अरदास॥

यह भी सच है कि कभी-कभी वेदांत जब किसी जिगर में घर कर बैठता है, तो संसार के काम का नहीं छोड़ता,

अर्थ—जिन लोगों का स्थान तेरे प्रेम तले है (अर्थात् जो तेरी छत्रछाया में हैं), वे अपने मन में हुमा नामक पक्षी के परों का अर्थात् (उत्तम पशुओं की छाया का) ख्याल कब करते हैं। प्रियतम के तेज और ज्योति की सुंदरता के इच्छुक लोग दोनों लोकों के स्वामित्व से भी कब मन को शांति दे सकते हैं। उसकी प्रीति (भक्ति) में जंगल के नापनेवाले पागल (अर्थात् जंगल में फिरनेवाले प्रेमी लोग) सातों स्वर्गों को आँख की एक झपक से पददलित कर देते हैं।

ब गदाईये-दरत शाहिये आलम चिःकुनम।
ताज बख्शाने-जहाँनंद गदायाने-चंद॥

अर्थ—तेरे द्वार की भिक्षुकता (फकीरी) पर संसार के राज्य को मैं क्या करूँ, क्योंकि संसार को मुकुट दान करनेवाले ऐसे (तेरे द्वार के) भिक्षुक हैं।

बर दरे-मैकदह रिंदाने-कलंदर बाशन्द।
कि सतानंदो-दिहंद अफसरे-शाहंशाही॥

अर्थ—पानगृह (शराब खाना) के द्वार पर कलंदर रिंद होते हैं (अर्थात् सच्चे प्रेम का आनंद लेने वाले परमहंस मस्त साधु होते हैं), जो कि साम्राज्य (मुकुट और सिंहासन) का लेन देन करते हैं।

यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्च मानवः।
आत्मन्येव च संतुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥ भगवद्गीता ३-१७

अर्थ—जिनका आत्मा ही से प्रेम है, आत्मा ही से जिनकी तृष्णा दूर होती है, आत्मा ही में जिनको संतोष है, उनके लिये कहाँ का काम और कैसे धंधे?

जिस नीती इश्क नमाज. वह कीह पढे पढावेगा।

"अर्थात् प्रेम ही जिस की सन्ध्या है, वह क्या पढ़े और पढ़ावेगा।"

हर कि सायब शवद अज बाद-ए-इरफाँ सर मस्त।
हमचू खुरशेद दरीं, दायरा तनहा गर्दद॥

अर्थ—ऐ महाशय! जो कोई ज्ञान के मद्य से उन्मत्त हो जाता है, वह सूर्य की तरह इस परिधि [वृत] में अकेला मस्त हुआ फिरता है।

इक मन था सँग गया श्याम के, कौन भजे जगदीश।
ऊधो जी मन न भये दस बीस।

बहरेस्त बहरे-इश्क कि पेचिश किनारा नेस्त।
ईंजा जुज ईं कि सर बसपारन्द चारा नेस्त॥

अर्थ—प्रेम का समुद्र ऐसा है कि उसका कोई किनारा (सीमा) नहीं, यहां (प्रेम के स्थान पर) सिवाय इसके कि शिर दे दें और कोई उपाय नहीं।

गर तबीबे-रा रसद जीं साँ जुनूँ।
दफ्तरे-तिब रा फरोशोयद ब खूँ॥

अर्थ—यदि वैद्य की इस सच्चे पागलपन तक पहुँच हो जाय, तो वह वैद्यक के कार्य्यालय को रक्त से धो दें।

रह रह वे इश्का मारयाई। कहो किसनूँ पार उतारयाई॥

वेदांत नवयुवकों के श्वेत वस्त्र उतार कर लाल कफनी पहनाता है, उनकी स्त्रियों की आँखों के सुरमे को गरम २ आँसुओं में बहाता है, उनके बूढ़े माता-पिताओं को आठ-आठ आँसू रुलाता है।

नी सईयाँ! मैं कतदी कतदी लुट्टी।
पई पच्छी पिछवाडे रह गई, हत्थ मेरियाँ तन्द टुट्टी॥
सयाँ वराहियाँ पिच्छों छलडी लाही, काग मरेंदा कुट्टी।

सालू सलारी सड गए सारे बांही रही न जुट्टी ॥
भला होया मेरा चर्खा टुटडा, जिंद अजाबों छुट्टी ।
गहने गवाए, हुई बे फिकरी, नक्कों कन्नों बुट्टी ॥

किंतु ऐ क्षणिक सुख वाले पोलो के गेंद ! सत्य स्वरूप सूर्यके आकर्षण की दशा तुझे क्या मालूम। यहाँ बुरे-भले का विधान मत कर।

ऐ तुरा खारे-बपा नशकस्ता कै दानी कि चीस्त ?
हाले-शेराने कि शमशीरे-बला बर सर खुरंद।

अर्थ—ऐ प्यारे ! जब तेरे पग में एक काँटा नहीं टूटा है (नहीं चुभा है), तो तू उन नरसिंहों की अवस्था, जो विपत्तियों की कृपाण अपने शिर पर खाते हैं, कब जान सकता है कि क्या है ?

तरसम कि सर्फए-न बुरद रोजे-बाज पुर्स।
नाने-हलाले-शेख जे आबे-हरामे-मा ॥

अर्थ—मैं डरता हूँ कि प्रलय के दिन शेख की हलाल (विहित) रोटी हमारे हराम (निषिद्ध) जल (मद्य) से आगे न बढ़ जाय।

(कविवर हाफ़िज़ की इस शेर का तात्पर्य यह है कि धर्म शास्त्र के अनुकूल आचरण करने वाले कर्म काण्डी लोग सच्चे पुरुषों अर्थात् सच्चे प्रेमियों से कहीं आगे न बढ़ जायँ)।

उनको कौन बुरा कह सकता है जिनके लिये—

सूझे नहीं दिन-रात तेरे ध्यान में प्यारे।
अपनी तो सहर है यही और शाम यही है॥

त्वमेव माता च पिता त्वमेव। त्वमेव बंधुश्च सखा त्वमेव ॥
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव। त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥

अर्थ—हे ईश्वर ! आप ही मेरे माता, पिता, संबंधी

और मित्र हो; और हे देवों के देव ! आप ही विद्या, धन और मेरे सब कुछ हो।

किश्वरे-दिल बतो दादम कि तूई-हाकिमे-ओ।
हाकिमे-जुज तो दरीं किश्वर अगर हस्त बिगो॥

अर्थ—हृदय आकाश मैंने तुझको सौंप दिया, क्योंकि तू ही उसका शासक है, इस में तेरे सिवा यदि कोई और शासक हो, तो बतला।

क्या उन पर कर्तव्य-पालन में कमी का लांछन लग सकता है कि जो संसार की ओर से एक प्रकार "ऐ ज्वानी की मृत्यु, वाह वा तुझे स्वागत हो" कहते हुए युवा-मृत्यु का शरबत पी गए। वह स्त्री और माता-पिता अपने भाग्य (बखतो रोज़गार) से और क्या चाहते हैं जिनका प्यारा ज्ञान अग्नि में स्वाहा हो गया।

यो वा एतामेवं वेदापहत्या पाप्मानमनंते स्वर्गे लोके।
ज्येये प्रतितिष्ठति प्रतितिष्ठति। (उपनिषद)

अर्थ—जिसने ब्रह्म को पूरा पूरा जान लिया उसके समस्त लांछन और पाप झड़ गए; वह अनंत आनंदघन और परम स्वरूप में जमकर बैठता है, जमकर बैठता है।

ख्वाहद चो दर पाए-रेजी जरश।
चे शमशीरे-हिंदी नहीं बर सिरश॥
उमेदो-हिरासश न बाशद ज कस।
बरींनस्त बुनियादे-ताहीदो-बस॥

अर्थ—पूर्ण ज्ञानी के पैरों में चाहे तू सोना गिरादे और चाहे हिंदी तलवार तू उसके शिर पर रख दे. उसके निकट दोनों समान हैं। उसको किसी से आशा और भय नहीं है। अद्वैत की नींव केवल इसी पर अंत करती है।

वेदांत यदि किसी को ड्यूटी (कर्तव्य) की ओर से लापरवाह करता है तो अहोभाग्य, और क्या चाहिए ? प्रियतम स्वतः आकर मारे प्रेम के यदि स्त्री के कपड़े उतारता है, तो भाग्य उदय हुआ. सोये हुए भाग्य जग पड़े, जन्म लिया ही और किस लिये था ? वह आँखें जो प्रियतम के स्वरूप की ज्योति पर पतंग नहीं बनीं, कव्वे [काग] उड़नेवाली घुभानी का गोला क्यों न हुई ? वह कान जो प्रियतम की चर्चा में नहीं लगे, ढाक के दोना क्यों न बने ?

सो संगत जल जाय कथा नहिं राम की ।
बिन लाडे के बात भला किस काम की ॥

वह आँख कि वेनम हो, वह हो कोर तो बेहतर ।
वह दिल कि है बेदर्द वह जल जाय तो अच्छा ॥

जिस इश्क पर सिर न दिया, जुग जुग जिया तो क्या हुआ ।
जिस प्रेम-रस चाख्या नहीं, अमृत पिया तो क्या हुआ ॥

भारत की हितैषता का दम भरने वालो ! देश का भार नहीं उतरेगा जब तक अपने नेत्रों की ज्योति तथा हृदय के खंडरूप नवयुवकों का ज्ञान (ज्ञानाग्नि) के कुंड में नरमेध [मनुष्य-यज्ञ] न देखोगे ।

तं त्वा भग प्रविशानि स्वाहा । स मा भग प्रविश स्वाहा ।
तस्मिन् सहस्र शाखे । निभगाऽहं त्वयि मृज़े स्वाहा ॥

अर्थ—हे ओम् ! मुझे अपने स्वरूप में लयता दे—स्वाहा । तू मेरे भीतर घर कर ले—स्वाहा ।

तेरी माया में सहस्रों उलझन हैं, मैं तेरे स्वरूप में स्नान करता हूँ—स्वाहा ।

वेदांत के यहां तो यह बात है नहीं, कि संसार मेरा बना रहे, मैं बराबर गुलछर्रे उड़ाता जाऊँ और जब कभी गड़बड़ी

हो तो प्रार्थनाएँ (Prayers) करके ईश्वर से झाड़ने बुहारने या कमरे सजाने का काम ले लूँ। वेदांत का ईश्वर तो बड़ा विशाल मेधावाला ईश्वर है, दास या सेवक का काम भी नहीं करने का। तुम्हारी इच्छाओं को पूरा करने के लिये दलाल नहीं बनने का। यहां तो जब तक समस्त इच्छाएँ उठ न जायं, महाराज दर्शन नहीं देने के, या यों कहो कि जब ईश्वर की पहचान हुई, इच्छाओं की एकदम सफ़ाई होगई।

हर जा कि सुल्ताँ खेमा जद, गौगा नमानद आम रा।

अर्थ—जिस जगह बादशाह खेमा लगाता है, लोगों का कोलाहल नहीं रहता।

सत्यस्वरूप सूर्य के आगे संसार तो कण के समान भी नहीं रह सकता। वेदांत का विस्तार ज़रा सी भूमि नहीं है, अद्वैत का क्षेत्रफल शारीरिक कामनाओं तक परिमित नहीं।

हम खुदा ख्वाही व हम दुनियाये दूँ।
ईं खयाल अस्तो मुहाल अस्तो जनूँ॥

अर्थ—यदि तू ईश्वर और तुच्छ संसार दोनों को एक साथ चाहता है, तो यह तेरी भ्रांति है और पागलपन है।

एवात्मैवाऽधस्तादात्मो परिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेद ँ सर्वामेति स वाएष एवं पश्यन्नेव एवं विजानन्नात्मरतिरात्म क्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराट भवति।
—सामवेद छांदोग्योपनिषद।

अर्थ-निःसन्देह आत्मा ही नीचे है आत्मा ही ऊपर है, आत्मा ही पीछे है, आत्मा ही आगे है, आत्मा ही दाक्षिण में है, आत्मा ही उत्तरमें है, आत्मा ही यह सब कुछ है। वह जो यही देखता

है, यही जानता है, यही सोचता है, उसका प्यार है तो आत्मा से, उसका खेल है तो आत्मा से, उसका घुट कर मिलना (हम बगल होना) है तो आत्मा से, उसकी प्राण-विश्रांति है तो आत्मा से, वही उस तेज स्वरूप को पाता है।

बैठत रामहि, ऊठत रामहि, बोलत रामहि, राम रह्यो है।
खावत रामहि, पीवत रामहि, धामहि रामहि, राम गह्यो है॥

जागत रामहि, सोवत रामहि, जोवत रामहि, राम लह्यो है।
देतहु रामहि, लेतहु रामहि, सुंदर रामहि राम रह्यो है॥

करें हम किसकी पूजा और लगाऐ किसको चंदन हम।
सनम हम, दैर हम, बुतखाना हम, बुत हम, ब्राह्मण हम॥

गह अज जुल्फत परेशानम्, गह अज रूए-तो हैरानम।
हमीं कुफरस्तो-ईमानम्-हमीं लैलो निहारे-मन॥

अर्थ—कभी मैं तेरी जुल्फ़ माया से व्याकुल होता हूँ, कभी तेरा [स्वरूप] देखकर आश्चर्य होता हूँ. यही मेरा कुफर और ईमान है,और यही मेरी रात और दिन है।

तेरा जन राम रसायन माता।

प्रेम रसायन जाको उपज्यो, छोड न कितहूँ जाता।
ऊठत हर हर, बैठत हर हर, हर हर भोजन खाता॥

अठ सठ तीरथ मज्जन कीने, साधू धूरीं नहाता।
सफल जन्म हरजन का उपज्यो, जिन कीनो सौत बिधाता॥

तुरा गोयम, तुरा जोयम, तुरा दानम, तुरा ख्वानम।

अर्थ—तुझको कहता हूँ तुझको ढूँढता हूँ, तुझको जानता हूँ और तुझही को पढ़ता हूँ।

पुरसंद दोस्ताँ कि कुजा मेरवी ? बगो।
मुश्ताक रा चेः पुरसी बरे-यार मे रवम॥

अर्थ—मित्र पूछते हैं कि तू कहाँ जाता है, कहो ? मैं उत्तर देता हूँ कि प्रेमात्मा [जिज्ञासु] से पूछते हो, हम मित्र (आत्मस्वरूप) के पास जाते हैं।

यार गुफ्ता कस्ती ? गुफ्तम सनागोए-शुमा;
अज्मे-कुजा दारी, बिगो ? गुफ्तम सरे-कूए-शुमा।

अर्थ—यार ने पूछा कि तू कौन है, मैंने उत्तर दिया कि आपका प्रशंसक (स्तुति कर्त्ता)। फिर पूछा कि तू कहां का संकल्प रखता है, मैंने उत्तर दिया कि आपकी गली के द्वार का।

सबाहे-ईद कि मर्दम बकारो-बार खंद।
बलाकशाने-मुहब्बत ब कूए-यार खंद॥

अर्थ—ईद के सवेरे जबकि और मनुष्य कार-धंधे में लगते हैं, तो प्रेम की पीड़ा सहने वाले अपने प्यारे की गली में जाते हैं।

अपनी तो सहर है यही और शाम यही है।

महादेव ने वामदेव को कहा है—

अंतर्योगं बहिर्योगं यो विजानाति तत्वतः।
त्वया मयाप्यसौ वंद्यः शेषैर्वंद्यस्तु किं पुनः॥

अर्थ - जिसने भीतर-बाहर एक आत्मदेव को जाना, वह तो इस योग्य है कि मैं (शिव) और तू (वामदेव) भी उस को बंदना करें, औरों का उपास्यदेव होने में तो सन्देह ही क्या रहा ?

अवतारों के विषय में पुराणों में कहा है कि जिन्होंने भगवान् से शत्रुता प्रकट की, झगड़ा और संग्राम को बर्ता, उनका बहुत शीघ्र कल्याण हुआ, उनको महाराज ने बहुत शीघ्र मुक्ति प्रदान की।

अय प्यारो! वह नारायण रूप महात्मा भगवान का अवतार ही हैं जो अपने अस्तित्व से शत्रुता, डाह, ईर्षा-द्वेष रखनेवालों का मन-प्राण से भला चाहता है; उनको

सेवा में अपना प्यारा से प्यारा धन उपस्थित करने को प्रस्तुत रहता है। जिसके राम रोम से प्रेम टपक रहा है, जिसकी आँखों से आनंद बरस रहा है, जिसके मस्तक पर शांतिका चाँद चमक रहा है, ऐसे महापुरुष की ओर से वेदांत पहाड़ जितने क्रोध और आंधी की सी शत्रुता को चैलेंज करता है। उसके दर्शनों ही से क्रोध का पहाड़ और शोक की अँधेरी का नाम शेष रह जाय तो सही, पता मिल जाय तो कहना।—

आशिकाने-आफताब अज दिलबरे-मा गाफिलंद।
अय नसीहत गो, खुदारा रौ बबीनं-रौ बबीं॥

अर्थ—सूर्योपासक हमारे प्यारे (सच्चे मित्र) से अचेत (बे खबर) हैं, ऐ उपदेश करने वाले! ईश्वर के लिये जा और देख, जा और देख।

ब्रह्मविद्या वह जादू मंत्र है कि काली रंगत, ठिंगने कद और टेढ़ी टाँग में इस आश्चर्य का रूप-लावण्य भर देती है जिससे संसार भरके ऊंचे कद वाले अत्यन्द सुन्दर स्वरूप हज़ार-हज़ार वर्ष तक बाँसुरी पर साँपों की तरह खिंचे हुए जान दे देने को एक गड़रिए (Divine Shephered) के देश में दौड़े जाते हैं। हाय गड़रिया।

ता दीदा बख्वाब दीदा रूयत।
पैवस्ता दर आर्जूए ख्वाब अस्त॥

अर्थ—जब से आँखने तेरा रूप स्वप्न में देखा है, वह सदैव उस स्वप्न की लालसा में हैं।

सुरतवर्धनं शोकनाशनं स्वरित वेणुना सुष्ठुचुंबितम्।
इतर राग विस्मारणं नृणा वितर वीरण: तेधरामृतम्॥

अर्थ—आनंद और प्रसन्नता का बढ़ाने वाला, शोक को

दूर करने वाला, धीमी स्वर वाली बाँसुरी से सुशोभित और अन्य सांसारिक भोगों को भुला देनेवाला (प्यारे श्रीकृष्ण का) ज्ञानोपदेश रूपी अमृत सत्य के जिज्ञासुओं को मुक्ति रूपी दान देने की शक्ति रखता है।

हाय गोलचंद ! मेरे लाल ! तू गोबर मिट्टी (सांसारिक इच्छाओं) में क्यों हाथ भर रहा है? यह खेल अच्छा नहीं, मक्खन जैसा शरीर तुमने मैला क्यों कर लिया ? गोबर मिट्टी में तो बिच्छू (दुःख) होते हैं, कहीं काट खायँगे, फिर होंठ बिसूर कर रोना आरंभ करोगे। तुम्हारा रोना तुम्हारा राम नहीं सह सकता। मेरे नन्हें ! आओ तुम्हें नहलाऊँ, धुलाऊँ, दूध पिलाऊँ, तुम गड़रिए तो नहीं, तुम तो द्वारकाधीश (जल थल के स्वामी) हो, छत्र-सिंहासन के अधिकारी हो, छोड़ो गँवारपन।

ॐ ! ॐ !! ॐ !!!

नोट—"लोगों को वेदान्त क्यों नहीं भाता" इस शीर्षक के अन्तर्गत स्वामीजी के तीन लेख (१ खलूसे-बातन अर्थात् आंतरिक शुद्धि। २ अमली तालीम अर्थात् व्यवहारिक ज्ञान। और ३ वेदान्त का एक साधन बशाशत अर्थात् प्रसन्नता) हैं जो उर्दू रिसाला अलिफ के ४, ५, ६ भागों में प्रकाशित हैं।

सूचना ।

श्री हिन्दी ज्ञानेश्वरी गीता श्री संतशिरोमणि ज्ञानेश्वर महाराज के मराठी गीता भाष्य का सरल हिन्दी अनुवाद है। इसका विज्ञापन ग्रन्थावली के पूर्व भागों में निकल चुका है। कई मास से हमारे स्टाक में नहीं रही थी। अब फिर थोड़ी सी प्रतियाँ आगई हैं इस लिये प्रार्थना है कि ग्राहकों को इस के मगाँने में शीघ्रता करना चाहिये, अन्यथा हतास होना पड़ेगा।

मूल्य ७०० पृष्ठ की सुन्दर कपड़े की जिल्द का ३) रु० डाक व्यय अलग।

विशेष सुभीता ।

हिन्दी रामवर्षा—जो ग्रन्थावली के तीनों भागों (७—८—९) में अलग २ छपी है और जिसकी साजि द कापियों का मूल्य २॥ॽ) होता है, राम वर्षा के प्रेमियों के लिये एक ही जिल्द में बँधवा दी गई है और मूल्य केवल २) रक्खा गया है। मंगवाने में कृपया शीघ्रता कीजिये।

मैनेजर